मुक्तामाला
अति आनन्द उमगी अनुरागा।
चरण सरोज पखारन लागा॥
लेखकः दासुराम निषाद

॥ श्री सद्गुरुः शरणं नमः ॥

मुक्तामाला

[भक्ति, मुक्तिदायिनी पञ्चमणियों से युक्त]
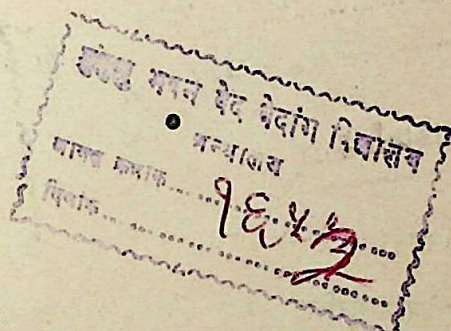
ब्रह्मलीन स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी के उपदेश

संग्रहकर्ता

दासूराम 'निषाद'

राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक :
श्री दासूराम 'निषाद'
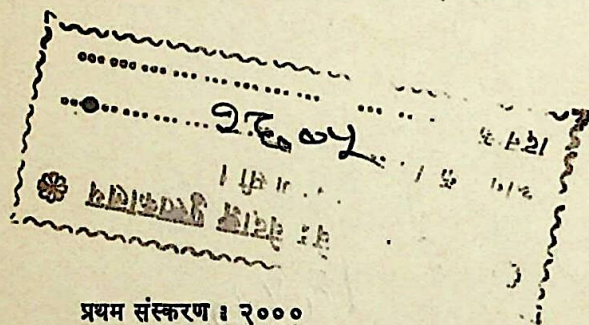
प्रथम संस्करण : २०००

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. १४/६५, वाराणसी
फोन : ६३६८३

भूमिका

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम्॥
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम्॥

भक्ति-भक्त-भगवन्त गुरु चतुर नाम वपु एक।
तिनके पद वंदन करूँ नाशे विघ्न अनेक॥

भगवत्-तत्त्व विषय पर विश्व में अपार साहित्य समय-समय पर संत-महापुरुषों, मनीषियों एवं अवतारी पुरुषों द्वारा प्रदान किया गया है जिसका एक विपुल भण्डार विश्व में सुलभ है। इन सबका मूल उद्देश्य मानव-जीवन को सफल एवं सुखी बनाना है। हम इन साहित्यों का अध्ययन-अध्यापन नित्य प्रति करते हैं परन्तु हम लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाते। इधर-उधर भटक जाते हैं फिर नाना प्रकार के भवजाल में फँस कर रह जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि हम इन साहित्यों में भगवत्-तत्त्व सम्बन्धी जो गूढ़ तत्त्व छिपे हैं उनका भेदन नहीं कर पाते। परिणाम यह होता है कि हम सीधा मार्ग न पकड़ उल्टा मार्ग पकड़ लेते हैं और संसाररूपी कालचक्र में फँसकर रह जाते हैं तथा भगवान् का सामीप्य नहीं प्राप्त कर पाते। भगवत्-तत्त्व विषय के कुछ मूल एवं आधार भूत तथ्य हैं जो हमें अपने महापुरुषों द्वारा प्राप्त हुई हैं, उसका यहाँ सूक्ष्म विवेचन करने का प्रयास किया गया है।

लगली बजुरिया अगमपुर हो, हीरा-मोती-रतन बिकाय।
चतुर-चतुर सौदा किये मूरख खड़ा पछताय॥

भगवत्-तत्त्व रूपी खान को खोदकर हमारे महापुरुषों ने जो हीरा-मोती रतन हमें प्रदान किया है, उसीका सौदा जो मनुष्य इस संसार में आकर करता है, वही चतुर है, धनी है, बाकी सब मूर्ख एवं निर्धन हैं। जो अनमोल रत्न प्राप्त हुए वे कौन-से हैं—जब तक हम उनको जानेंगे नहीं, उन्हें पहचानेंगे नहीं, तब तक हम उनका सौदा नहीं कर सकते। अतः उनकी जानकारी के लिए उन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

पञ्च मणियों से युक्त मुक्ता माला

१. भक्ति योग अनुपम सुख मूला।
मिलहिं जब संत होय अनुकूला।।

(भक्तियोग रूपी मणि)

२. जब होय ज्ञान एक रस।
ईश्वरहिं जीव भेद कस।।

(ज्ञानयोगरूपी मणि जिसमें आत्म-ज्ञान—परमात्म-ज्ञान का विवेचन)

३. उमा कहौ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना।।

(भजन एवं सत्संग रूपी मणि)

४. सब कर मत खग नायक एहा।
करहु रामपद पंकज नेहा।।

(विश्व में प्रचलित सभी मतों में आपस में समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित कर विषमता में समता एवं अनेकता

में एकता का बोध कराकर भगवान्
के सामीप्य को प्राप्त करने वाली
मणि । प्रेमा भक्ति रूपी मणि)

५. औरहु एक गुपुत मत सबही कहौ कर जोर।
शंकर भजन बिन नर पावहि नहि भगती मोर ।।

(यह तत्व ज्ञानरूपी मणि है जो
भगवत् - तत्त्व सम्बन्धी रतनों की
खान है ।)

उपर्युक्त हीरा-मोती-रतन रूपी सौदा करने वाले साधक को कुछ निर्देशक सिद्धान्त को अपने व्यावहारिक जीवन में कार्यरूप में परिणित करना आवश्यक है । क्योंकि उन सिद्धान्तों को बिना अमल में लाये हम यह सौदा नहीं कर सकते ।

निर्देशक सिद्धान्त

पथ्य—मोक्ष के चार द्वारपाल—

१. शम—शम अर्थात् चित्त की वृत्तियों को विषय की तरफ जाने से रोकना।

२. विचार—विचार भगवान् को प्राप्त करने के उद्देश्य से सन्त महापुरुषों एवं शास्त्रों में प्रतिपादित विचार को ग्रहण करना।

३. सन्तोष—सन्तोष प्रत्येक अवस्था में सन्तोष धारण करना।

४. सत्सङ्ग—सत्सङ्ग निरन्तर सन्तस-ङ्ग करना सन्त महानुभावों का सान्निध्य ग्रहण करना।

१. सत्य तीर्थ—भगवान् के सत्य स्वरूप का बोध।

२. क्षमा तीर्थ—हर प्राणी के प्रति क्षमा भाव।

३. इन्द्रियनिग्रह तीर्थ—शरीर एवं इन्द्रियों को विषय के तरफ जाने से रोकना।

●

मानस तीर्थ जिनमें साधक को गोता लगाना है।

४. सर्वभूतेषु दया तीर्थ—हर प्राणी के प्रति दयाभाव।

५. सत्यवादिता तीर्थ—व्यवहार में सदा सत्य भाषण करना।

६. ज्ञान तीर्थ—आत्मज्ञान को प्राप्त करना।

७. तप तीर्थ—मनोनिग्रह ही सबसे श्रेष्ठ तप है इसलिए मन को विषय की ओर से मोड़ कर उसे भगवान् की तरफ सम्मुख हो जाना।

कुपथ्य

१. वाणी का वेग। २. मन का वेग। ३. तृष्णा का वेग।
४. उपस्थ वेग (जनेन्द्रिय वेग)। ५. उदर वेग।

इन पाँचों वेगों पर पूर्ण नियन्त्रण स्थापित करना परम आवश्यक है। इन निर्देशक सिद्धान्तों का पालन करने वाला पुरुष भगवत्-तत्त्वरूपी हीरा-मोती-रतन तथा मणि-माणिक्य का अनमोल सौदा इस जगत् में आकर कर सकता है एवं अपने जीवन को सफल एवं सार्थक बनाकर जीवन के परम लक्ष्य भगवान् को प्राप्त कर सकता है। इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह का कोई स्थान नहीं है। श्री सद्गुरु के चरण कमलों में समर्पित।

दासूराम 'निषाद'

संस्तुति

इस पुस्तक को लिखने की प्रेरणा प्रदान करने का मुख्य श्रेय गोला-घाट, वाराणसी, निवासी सर्वश्री पं० चन्द्रभूषण मिश्र को है। इस पुस्तक में वर्णित विषयों को लिखित रूप में परिवर्तित कराने का श्रेय राजघाट, नया महादेव निवासी डॉ० श्रवणकुमार शुक्ल को है, तथा इसे लिपि-वद्ध करने का सराहनीय कार्य किया राजघाट नयामहादेव निवासी श्री गोरख नाथ यादव ने। मैं हृदय से इन महानुभावों का आभारी हूँ, जिनके पूर्ण सहयोग से इस पुस्तक को हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हो सके। धन्यवाद !

दासूराम 'निषाद'
राजघाट, वाराणसी

मेरा अपना कुछ नहीं, जो कछु है सब तोर।
तेरा मुझको सौंपते क्या लागत है मोर॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः-सर्वे सन्तु निरामयाः

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

ब्रह्मलीन श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी परमहंस, योग आश्रम टड़वाँ

प्रथम सोपान

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥

श्रद्धालु भक्तगण आज आपके समक्ष एक अद्भुत एवं अलौकिक राम-कथा का वर्णन कर रहा हूँ, जिसका शीर्षक है—

भक्ति योग अनुपम सुख मूला ।
मिलहिं जो सन्त होइ अनुकूला ॥

इस पद का आशय यह है कि भक्तियोग सभी सुखों का मूल है और यह सन्तों के अनुकूल होने पर उनकी कृपा से ही प्राप्त होता है । सन्तों के अनुकूल होने पर जो भक्तियोग प्राप्त हुआ, उसका स्वरूप क्या है इसको जानने के पहले हमें यह जानना परम आवश्यक है कि भगवान का क्या स्वरूप है । भगवान कहते किसे हैं, भगवान रहते कहाँ हैं तथा उनका स्वरूप क्या है ? भारतीय वेदान्त-दर्शन के अनुसार सत्य ही भगवान है । यथा—"सत्यम् शिवम् सुन्दरम्" अर्थात् जो सत्य है वही शिव है, वही सुन्दर एवं परम प्रकाशक आनन्दमय स्वरूप है । तो सत्य क्या है ?

सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत् असार ।
नित्यानित्य विवेक यह लीजै बात विचार ॥

चेतन मात्र प्रकाशस्वरूप आत्मा ही सत्य है, नित्य है, सुख है तथा प्रकाश है एवं इसके अतिरिक्त जो कुछ भी संसार में दिखाई पड़ रहा है वह सब अनित्य है, असत्य है, दुःख रूप है और अन्ध-

कारमय है। ऐसा जिसके पास विवेक है, वही विवेकी पुरुष है। यह निर्विवाद सत्य है कि आत्मा ही नित्य है, सत्य है, शाश्वत है एवं निरंजन है। आत्मा ही अज है, अखण्ड है तथा अविनाशी है एवं अकथ-अगाध-अनादि एवं अनूप है। इसे न दुःख होता है, न सुख होता है, न भूख लगती है, न प्यास लगती है, न इसका जन्म-मृत्यु होता है। इन षट् विकारों से रहित वह शुद्ध-बुद्ध अमृत एवं महान है। इसका स्वरूप क्या है—

ज्योतियों का ज्योति है, सर्वप्रथम है भासता।
अव्यय सनातन दिव्य दीपक सर्वलोक प्रकाशता॥

यही परम प्रकाशक चेतन मात्र प्रकाश स्वरूप आत्मा ही हममें, तुममें, खड्ग में, खम्भ में, घट-घट में एकरस एवं 'अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्' है। यही व्यष्टि में क्षेत्रज्ञ है एवं समष्टि सर्वज्ञ है। व्यष्टि में जो क्षेत्रज्ञ है वह उसका अपना स्वरूप है जिसको आत्मा कहते हैं एवं समष्टि में जो सर्वज्ञ है वही उसका विराट स्वरूप है जिसे परमात्मा कहते हैं। इस प्रकार व्यष्टि से समष्टि का योग ही आत्मा का परमात्मा से योग है और यही परम कैवल्य पद की प्राप्ति है। इस विराट स्वरूप वाले परमात्मा की भक्ति क्या है, हमारा भक्ति-दर्शन क्या कहता है तथा उसकी उपलब्धि क्या है? गोस्वामी जी के शब्दों में कि उस विराट स्वरूप वाले राम की भक्ति यही है—

सियाराम मय सब जग जानी।
करहु प्रणाम जोरि युग पाणी॥

यह सारा जगत मेरे स्वामी राम का स्वरूप है और मैं सबका सेवक हूँ। जी हाँ, यही भक्ति दर्शन है कि इस प्रकार सारे विश्व के प्रति स्वामी-सेवक का भाव स्थापित किये बिना कोई भी भगवत्-

साक्षात्कार नहीं कर सका है और न भवसागर पार कर सका है। यथा—

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धान्त विचारि॥
जो चेतन को जड़ करहि जड़हि कर चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहि जीव ते धन्य॥

यही वह भक्ति दर्शन रूपी दर्पण है जिसके भीतर परमात्मा का प्रतिबिम्ब छिपा है। कबीरदास जी भी इसी दर्शन की तरफ जन-मानस का ध्यान आकर्षित करते हुए कहते हैं :—

कबीर योगी जगत गुरु तज दे जगत की आस।
जो जग की आशा करे तो जगत गुरु वह दास॥

इसी भक्ति दर्शन रूपी दर्पण में देखने पर श्री कबीरदास जी को क्या दिखलाई दिया ?

दर-दीवार दर्पन भया, जित देखूँ तित तोहि।
कंकड़ पत्थर-ठीकरी भये आरसी मोहि॥

उस दर्पण में क्या देखा उन्होंने—

न हम है न वो है, न और कोई दू है।
जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है॥

तो तू क्या है—

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥
जानत तुमहि, तुमहि होइ जाई।

जी हाँ देखा आपने यही भक्ति दर्शन है। जिसका भेद बतलाते हुए भगवान शंकर पार्वती जी से भी यही बात कहते हैं कि—

उमा जे राम चरन रति विगत काम-मद-क्रोध।
निज प्रभुमय देखिय जगत केहि सन करहि विरोध॥

भक्ति दर्शन के इसी गूढ़ तत्त्व को समझाते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम राम श्री हनुमान जी से कहते हैं कि मेरा अनन्य भक्त कौन है ? यथा—

सो अनन्य मम जासु कह मति न टरै हनुमन्त।
मैं स्वामी सचराचर रूप राशि भगवन्त॥

हे हनुमान ! मेरा अनन्य भक्त वही है जिसका ऐसा दृढ़ विश्वास एवं बुद्धि है कि चराचर विश्व में व्याप्त सभी नाम-रूप में मुझ श्री राम को स्वामी रूप में देखता है एवं सारे जगत् के प्रति सेवा भाव से समर्पित्त है, वही मेरा अनन्य भक्त है।

भगवान की इसी अनन्य भक्ति को प्राप्त करने के लिए हमारे मनीषियों ने जिस मार्ग का अनुसन्धान किया उसे ही भक्तियोग कहते हैं। इस भक्तियोग को नारद भक्तिसूत्र के अनुसार तीन भागों में विभक्त किया गया।

१. नवधा भक्ति—नवधा भक्ति के नव अंग—श्रवण, कीर्तन, सुमिरन, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य एवं समर्पण।

२. प्रेमा भक्ति—

३. परा भक्ति—

नवधा भक्ति के नवम सोपान पर पहुँच कर भक्त पूर्णतया भगवान के सम्मुख आत्म-समर्पण कर देता है तब उसे भगवान के प्रति सहज एवं स्वाभाविक अनुराग उत्पन्न हो जाता है, तब वह साधक प्रेमा भक्ति में पदार्पण करता है और जब प्रेम का बन्धन दृढ़ से दृढ़ हो जाता है तब स्वामी से अविच्छिन्न सम्बन्ध स्थापित

हो जाता है, सेवक स्वामी मिलकर एक हो जाते हैं तथा साधक-अद्वैत अवस्था को प्राप्त कर परम कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है। इस अद्वैत अवस्था तथा परम कैवल्य पद को प्राप्त हुए जिस साधक का सारे जगत के प्रति सेवा भाव बना है वही श्रेष्ठा परा भक्ति है। अब नवधा भक्ति के स्वरूप का वर्णन भगवान श्रीराम के मुख से सुनें, जिसे उन्होंने सेवरी को बतलाया था।

प्रथम भक्ति संतन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरुपद पंकज सेवा, तीसरी भक्ति अमान।
चौथी भगति मम गुन-गन करिय कपट तज गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा,
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा।
छठ दम-शील-विरति बहु करमा,
निरति निरंजन सज्जन धर्मा॥
सातवँ सम मोहिमय जग देखा,
मोसे अधिक सन्त कर लेखा।
आठवं यथा लाभ सन्तोषा,
सपनेहु नहिं देखिय पर दोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना,
मम भरोस हिय हरष न दीना॥

इस प्रकार नवधा भक्ति के नवम सोपान तक पहुँचते-पहुँचते साधक का अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और एकमात्र भगवान का आश्रय ग्रहण कर सारे हर्ष-विषाद से दूर हो जाता है और उसे भगवान के प्रति सहज एवं स्वाभाविक प्रेम उत्पन्न हो जाता है। ऐसे प्रेमी साधक के लक्षणों का वर्णन करते हुए श्री सुन्दर दास जी

कहते हैं—

प्रेम लग्यो परमेश्वर सो तब भूलि गयो सगरो घर बारा।
ज्यों उन्मत्त फिरही जितही तित नेक रही न शरीर सम्भारा॥
श्वास-उसास उठे सब रोम चलें दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करे नवधा भगति, छाकि परयो रस पी मतवारा॥

न लाज तीन लोक की न वेद को कहो करे।
न संक भूत प्रेत की न यक्ष देव से डरे॥
सुने न कान और की द्रशे न और इच्छि ना।
कहे न मूकवत और भक्ति प्रेम लक्षणा॥
कबहुक हँसि उठि नृत्य करे, फिर रोवन लागे।
कबहुक अति उमंग मन ऊँचे स्वर से गावे॥
कबहुक मुख मौन होय गगन सदृश्य रह जावे।
चित्त-वित्त लगो हरि सो सावधान क्यों कर रहे॥
प्रेम लक्षणा भक्ति यह सुनहु शिष्य सुन्दर कहे॥

इस प्रकार इस अवस्था तक पहुँचने पर साधक की चित्त की वृत्तियाँ तदाकार एवं ब्रह्माकार हो जाती हैं और साधक अपने दृढ़ से दृढ़तर प्रेम आलिंगन के पाश में भगवान को आबद्ध कर लेता है और स्वामी सेवक एक होकर परम कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है परन्तु इस अवस्था को प्राप्त जिस साधक का जगत् के प्रति सेवा भाव बना हुआ है वही श्रेष्ठा पराभक्ति (अनन्य भक्ति है। पराभक्ति का सुन्दर चित्रण यहाँ श्री सुन्दरदास जी के शब्दों में व्यक्त किया गया है।

सेवक-सेव्य मिलो रस पीवत,
नहिं कछु भिन्न अरु भिन्न सदा ही।
ज्यों जल पिंड रह्यो जल बीच सो,
पिण्ड अरु नीर जुदे कछु नाहीं॥

ज्यों दृग पुतरी दृग एक नहि कछु भिन्न अरु भिन्न दिखाही।
सुन्दर सेवक भाव सदा यह भक्ति परा-परमातम माही॥

श्रवन बिन धुन सुनै, नयन बिन रूप निहारै।
रसना बिन उच्चरै प्रशंसावहु विधि करै॥
नृत्य चरन बिन करै, हस्त बिन ताल बजावै।
बिन अंग मिल संग अति आनन्द उपजावै॥

बिन शीश नवे जह सेव्य को सेवक भाव सदा रहे।
मिल परमातम सो आतम परा भक्ति यह सुन्दर कहे॥

इस प्रकार भक्ति के तीनों स्वरूपों का वर्णन करने के पश्चात् अब आपके समक्ष भक्ति के क्रियात्मक स्वरूप का वर्णन किया जाता है जिसे ध्यान से सुनें। क्रियात्मक भक्ति का तात्पर्य यह है कि एक भक्त को व्यावहारिक जगत् में आकर क्या लेना है, क्या देना है, क्या कथनी हो, कैसी करनी हो एवं कैसी रहनी हो।

गोस्वामीजी के अनुसार भक्त को इस जगत् में आकर लेन-देन का केवल दो व्यापार करना है। वह क्या है?

तुलसी या जग में आइके कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ो भलो लेने को हरि नाम॥

इस जगत् में आकर भक्त को 'देने को टुकड़ो भलो' का आशय यह है कि 'परहित निरति निरंजन' क्योंकि इस संसार में इस शरीर के द्वारा किये जानेवाला यदि कोई सर्वश्रेष्ठ धर्म है तो वह क्या है 'परहित सरिस धरम नहिं भाई' और यहाँ से लेना क्या है, इस संसार में जितने सौदे हैं उनमें सच्चा सौदा केवल एक ही है, वह क्या है 'सत् हरि भजन जगत् सब सपना।' इस तरह एक भक्त को इस संसार रूपी बाजार से सिर्फ दो ही सौदा करना है 'देने को टुकड़ा भलो लेने को हरिनाम।' अब कथनी-करनी-रहनी कैसी हो, उसे भी देखें।

अब हौ कासों वैर करौं।
कहत पुकारत प्रभु निज मुख सों हौं घट घट विहरौं ॥
आप समान सभै जग लेख्यो, भक्त न अधिक डरो।
श्री हरिदास हरि कृपा सो हरि कीनित निर्भय विचरो ॥

कवहुँक हौं यही रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा सो संत स्वभाव गहौंगो ॥
यथा लाभ संतोष सदा काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित निरति निरंजन मन-कर्म-वचन नेम निबहौंगो ॥
परसु वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक ना दहौंगो।
विगत मान सम शीतल मन परगुन नहि दोष गहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यही पथ रही अविचल हरि भगतो लहौंगो ॥

जी हाँ, देखा आपने भक्ति का क्रियात्मक स्वरूप क्या है ?

प्रीत राम सो नीति पथ चलिय राग रिस जीत।
तुलसी संतन के मतै यही भगति कै रीति ॥
सूधो-मन-सूधो वचन सूधौ सब करतूति।
तुलसी सूधो सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति ॥

भागवत में 'वाणी गुणानुकथने' (१०-१०-३८) जो श्लोक कहा गया है उसका भी भाव क्रियात्मक भक्ति को दर्शाता है। जिसका आशय वाणी प्रभु के गुणानुवाद में लगी रहे, कान प्रभु के कथा-श्रवण में लीन रहे। हाथ प्रभु के सेवा-कार्य में एवं मन प्रभु के चरणारविन्दों का चिन्तन करता रहे। मस्तक प्रभु के निवासभूत जगत् को नमस्कार करने को सदा झुका रहे तथा नेत्र प्रभु के स्वरूपभूत सन्त चरणों को सदा निरखते रहें।

इस प्रकार की भक्ति का मूल उद्गम स्थान धरा पर कहाँ है अर्थात् वह जगत् में प्रगट एवं सुलभ कहाँ है ?

राम भगति जहँ सुरसरि धारा।
सरसहि ब्रह्म विचार पसारा॥

जो भक्ति प्रगट हुई उसका भी स्वरूप देखिये।

राम भगति चितामनि सुन्दर। बसहि गरुड़ जाके उर अंतर॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहि चहिय कछु दिया घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहि आवा। लोभ बात नहीं ताहि बुझावा॥
प्रबल अविद्या तम मिट जाई। हरही सकल सलभ समुदाई॥
खल कामादि निकट नहीं जाही। बसहि भगति मनि जाके उर माही
गरल सुधा सम अरि हित होई। सोइ मनि बिनु सुख पाव न कोई॥
व्यापहि मानस रोग न भारी। जिनके बस सब जीव दुखारी॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहु ताके॥
चतुर शिरोमनि तेहि जग माही। जे मनि लागि सुजतन कराही॥
सोइ मनि यद्यपि प्रगट जग अहई। संत कृपा बिन कोउ नहीं लहही
सुगम उपाय पाइबे केरे। नर हत भाग्य देहि भट मेरे॥
पावन परवत वेद पुराना। राम कथा रुचिकारक नाना॥
मरमी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान, विराग नयन उर गारी॥
भाव सहित जोखो जेहि प्रानी। पाव भगति मनि सब गुन खानी॥
मोरे मन प्रभु अस विस्वासा। राम से अधिक राम कर दासा॥
राम सिंधु धन सज्जन धीरा। चंदन तरु हरि संत समीरा॥
सबकर फल हरि भगत सोहाई। सो बिन संत न काहू पाई॥
अस विचारि जो कर सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ विहंगा॥

ब्रह्म पयोनिधि मंदर ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथ काढ़हि भक्ति मधुरता जाहि॥
विरति चर्म असि ज्ञान मद-लोभ-मोह रिपु मारि।
जय पाई सो हरि भगत देख खगेश विचार॥

इस प्रकार राम भक्ति संसार में कहाँ प्रगट है उस स्थान को

लखा दिया गया, जहाँ जाने पर ही राम की भक्ति प्राप्त हो सकती है क्योंकि—

बिन सतसंग विवेक न होई। संत कृपा बिन सुलभ न सोई॥

बिन सतसंग न हरि कथा तेहि बिन मोह न भाग।
मोह गये बिन राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

मज्जनफल पेखिय ततकाला। काक होऊ पिक बकऊ मराला॥
सुनि आचरज करैं जन कोई। सत संगति महिमा नहीं गोई॥
बालमीक नारद घट जोनी। निज-निज मुखन कही निज होनी॥

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताहि सकल मिली जों सुख लौ सतसंग॥

अतः यदि भगवान् से मिलने की तीव्र उत्कंठा, अभिलाषा हो तो सब उपाय छोड़कर—

संत समागम कीजिये, तजिये और उपाय।
सुन्दर बहुत ही उद्धरे संत समागम पाय॥
सुरता जो हरी मिलन की तो करिये सतसंग।
बिना परिश्रम पाइये सोगति देव अभंग॥
संत मुक्ति के पवरिया, इनसे करिये प्यार।
कुंजी इनके पास है सुन्दर खोलहि द्वार॥
सुन्दर साधु दयालु है कहै ग्यान समुझाय।
पात्र बिना ठौर नहि शब्द निकर बहि जाय॥
संतन के यह वाणिज है निस-दिन ग्यान विचार।
ग्राहक आवे लेन को ताही के दातार॥

उपर्युक्त कथन के आधार पर यह निर्विवाद सत्य प्रतीत होता है कि—

राम भगति के ते नर अधिकारी। जिनको सत संगत अति प्यारी॥

भक्ति स्वतंत्र सकल सुख खानी। बिन सतसंगत नहि पावहि प्रानी॥

और यहा है—

भक्ति योग अनुपम सुख मूला। मिलहि जौं सन्त होय अनुकूला ॥

उपसंहार

इस प्रकार राम की यह लघु कथा जैसा श्री गुरुमुख से सुना था वैसा ही आपके समक्ष वर्णन तो किया गया परन्तु अपने राम के स्वयं कुछ समझ में नहीं आया क्योंकि श्रीमान् जी की कथा ही ऐसी है कि 'समुझत बनहि न जात बखानी।'

ऐसा क्यों है क्योंकि—

श्रोता-वक्ता-ज्ञान-निधान कथा राम के गूढ़ ! किमि समुझों मैं जीव जड़ कलि मल ग्रसित विमूढ़ ! अथक परिश्रम एवं जतन करने पर जो कुछ थोड़ा समझ में आया उसे भी आपके सामने प्रस्तुत कर रहा हूँ। देखें-सुनें—शायद आपके भी समझ में कुछ आ सके तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूँगा।

उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती।
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती ॥
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति गूँजती।
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती ॥
अखंड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥

"Service to the man is service to the God."

जी हाँ, यह शाश्वत सत्य है कि मानवता की एवं प्राणिमात्र की सेवा ही भगवान् की सच्ची पूजा एवं भक्ति है और इसको कौन-सा महापुरुष प्राप्त कर पाता है जो—

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मरतबा चाहे।

कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है ॥

कैसा गुलजार होता है—

इश्क में जब अपनी हस्ती का एहसास मिटाया जाता है।
फिर जिस चीज को तमन्ना होती है वह हर शय में पाया जाता है॥

जिसने इस तरह से मिटना जान लिया वही पहुँचा, बाकी सब रास्तेमें ही रह गये।

ऐसे मरजाद मेटि जो मोहन को धावैं।
काहे न परमानन्द प्रेम पदवी वे पावैं॥
ग्यान-योग षट कर्म से प्रेम भक्ति है साँच।
मैं यह उपमा देत हौ हीरा आगे काँच॥

सुनो मन बावरे—बस इसी मुकाम पर मन बावरा आकर स्थिर हो गया क्योंकि उसे अपनी अभीष्ट वस्तु मिल गयी सो क्या थी,? है प्रेम जगत् में सार अरु कछु सार नहीं है।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

द्वितीय सोपान

श्रीसद्‌गुरुशरणम्

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ॥
गोविन्दं परमानन्दं सद्गुरुं प्रणतोस्म्यहम् ।

ज्ञानयोगरूपी मणि

आपके समक्ष जिस विषय पर प्रकाश डालने जा रहा हूँ उसका विषय है 'जब होय ज्ञान एक रस, ईश्वर ही जीव भेद कस।' अर्थात् वह एकरसज्ञान क्या है जिसे जान लेने पर ईश्वर एवं जीव का भेद समाप्त हो जाता है। यह ज्ञान योगरूपी मणि है, जिसके अन्तर्गत आत्मज्ञान एवं परमात्मा-ज्ञान का विवेचन किया गया है।

अपनी छवि बनाइ के जब मैं पी के पास गई।
जब छवि देखी पीव की तो मैं अपनी भूल गई॥

तिलक छाप मेरो सब छीन लिन्ही रे
मोसे नैना मिलाय के।
मैं बलि-बलि जाऊँ तोरे रंगरेजवा का मोहे अपनी सी रंग दिन्हीं रे
मोसे नैना मिलाय के॥
प्रेमवटी का मधवा पिलाय के मोहे मतवारी कर दिन्हीं रे
मोसे नैना मिलाय के।
खुसरो साहब पर बलि-बलि जाऊँ मोहे सुहागिन कर दिन्हीं रे
मोसे नैना मिलाय के॥

मैं सोलहो श्रृङ्गार करके अर्थात् तिलक छाप लगा कर जब

अपने प्रीतम के दरबार में गयी और जब मेरे नैन प्रीतम के नैन से मिले तो उनकी छबि को देख कर मैं अपनो सुधि भूल गयी मैं उसमें खो गयी और सारा झगड़ा देश-काल-धर्म एवं तिलक छाप आदि का समाप्त हो गया और मेरे प्रीतम ने हमें अपने रङ्ग में रङ्ग दिया, मुझे अपना लिया और मैं अपने प्रीतम के रङ्ग में सराबोर रङ्ग गयी। अपनी मनमोहनी दृष्टि से प्रेमवटी का मधवा पिला कर मुझे मतवारी कर दिया। मैं अपने प्रीतम को पाकर निहाल हो गयी और मैं अमर सुहागिन बन गयी। सुहाग का प्रतीक चिह्न लाल होता है। सो कैसा होता है उससे सम्बन्धित एक रोचक प्रसङ्ग यहाँ प्रस्तुत है। एक बार श्री हनुमान जी ने माता जानकी के माँग में सिन्दूर को लाली देखकर पूछा कि माता जो आप सर में लाल रङ्ग क्यों लगाती हैं तो माता जी के मुख मण्डल पर सहज एवं स्वाभाविक लज्जा की लालिमा व्याप्त हो गयी तथा उन्होंने उत्तर दिया कि कोई विशेष बात नहीं है। मैं सिर में लाल रङ्ग इसलिए लगाती हूँ कि इससे भगवान् प्रसन्न रहते हैं। जानते हैं आप इस बात को सुनकर हनुमान जी ने क्या किया। दूसरे दिन हनुमान जो अपने पूरे शरीर पर सिन्दूर का लाल रङ्ग लगा कर सभा में उपस्थित हुए तो पूरी सभा हँसी के ठहाकों से गूँज उठी। जब लोगों ने उनके इस स्वाङ्ग का कारण माताजी से ज्ञात किया तो भगवान् राम ने हनुमान जी को अपने गले से लगा लिया और उसी दिन से श्री हनुमान जी हनुमन्त लाल हो गये। कैसे लाल हो गये ?

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

जानत तुमहि-तुमहि होय जाई। सारा झगड़ा समाप्त हो गया, न कुछ करना शेष रहा न कुछ जानना शेष रहा, न कुछ माना

शेष रहा और मैं पूर्ण विश्राम की अवस्था में पहुँच गया। उस अवस्था का भी अवलोकन करें।

माला जपूँ न कर जपूँ जिव्हा जपूँ न राम।
हरि मेरा सुमिरन करे मैं पाऊँ विश्राम॥

इस परमहंस अवधूत अवस्था को जो प्राप्त कर लिया वह साक्षात् ब्रह्म स्वरूप हो गया।

लक्षपक्ष दोनों मित्रों का पता नहीं अब चलता है।
डूब गये दोनों करुणा सागर में नहीं ज्ञान-ध्यान अब हिलता है॥
जितने भी दीन हैं जहाँ में सबकी सब मेरी है।
निश्चय करे न निज स्वरूप को अहं भाव ने घेरी है॥
निर्गुण-सगुण मन की बाजी भरे सयाने भटके।
निर्गुण-सर्गुण से है दूरी है मेरे सदा हजूरी॥
कोई धावे निराकार को कोई धावे साकारा।
वो साहब तो दोनों से न्यारा जाने का कोई जानन हारा॥
सगुण रूप को देख नेत्र से निर्गुण को मन में धर ले।
मन तुरङ्ग पर होकर सवार दिव्य लोक के दर्शन कर ले॥
आज चराचर विश्व को देना हमें यही प्रेम का नारा है।
सब धर्मों में हम हैं सब धर्म हमारा है॥

भारतीय वेदान्त शास्त्र द्वारा प्रदत्त ज्ञान दर्शन यही है कि 'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि-सोहं ब्रह्मास्मि'।

यह सारा जगत ब्रह्ममय है और मैं स्वयं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा ब्रह्म हूँ, मैं क्या हूँ, मैं चेतन मात्र प्रकाश स्वरूप आत्मा हूँ। नाना-नाम रूप यह जो समस्त लोक भास रहा है उन सबमें मैं ही हूँ मुझसे पृथक् संसार में किसी प्राणी पदार्थ की कोई सत्ता नहीं है। सबमें मैं ही हूँ और सब मेरे से ही उत्पन्न होता है। सृष्टि के अन्त में सब मेरे ही में लय हो जाता है और मैं एक रस अखण्ड चराचर

विश्व में व्याप्त हूँ, मैं नित्य हूँ, अद्वैत हूँ, शाश्वत हूँ, निरञ्जन हूँ। मैं अज हूँ, अखण्ड हूँ, अविनाशी हूँ। अकथ हूँ, अगाध हूँ, अनादि हूँ अनूप हूँ, अनन्त हूँ। न मेरा बार है, न पार है, न आदि है, न अन्त है, न मध्य है। मैं नित्य हूँ, सत्य हूँ, प्रकाश हूँ, सुख हूँ। न मुझे दुःख होता है, न सुख होता है, न भूख लगती है न प्यास लगती, न मेरा जन्म-मृत्यु होता है। इन षट् विकारों से रहित मैं शुद्ध-बुद्ध-अमृत एवं महान हूँ। मैं ही व्यष्टि में क्षेत्रज्ञ हूँ जो मेरा आत्मस्वरूप है तथा समष्टि में मैं ही सर्वज्ञ हूँ, जो मेरा विराट् स्वरूप है जिसे परमात्मा कहते हैं। स्व में जो मेरा स्वरूप है उसे जान लेना आत्म-ज्ञान कहलाता है। स्वरूप को जानकर उसका समष्टि में व्याप्त विराट से योग स्थापित कर लेना ही परमात्म-ज्ञान है और यही परम कैवल्यपद की प्राप्ति है। मेरा स्वरूप क्या है ?

ज्योतियों का ज्योति है सर्वप्रथम है भासता।
अव्यय सनातन दिव्य दीपक सर्वलोक प्रकाशता ॥

ऐसे ब्रह्म स्वरूप में स्थित एक ब्रह्मज्ञानी सन्त यारी साहब से लोगों ने पूछा आप किसकी पूजा करते हैं तो उन्होंने उत्तर दिया कि 'कह यारी और न दूजा। आप ही साहब आप ही पूजा।' बन्दे का वजूद कहाँ जब खुदा मिला। वह तो उसमें खो गया, गुम हो गया। गुम हो गये तेरे नजारों में तो फिर कुछ और की तमन्ना कौन करे। जिसने उस नजारे को देखा वह उसीमें खो गया उसकी सारी तमन्नाएँ इच्छाएँ समाप्त हो गयीं। क्योंकि उसे जान लेने-पा लेने के पश्चात् कुछ भी जानना-पाना शेष नहीं रहता। इस अवस्था वाला साधक किस दर्जे को प्राप्त हुआ ?

चाह गई चिन्ता मिटी मनवा हुआ बेपरवाह।
जिसको कुछ नहीं चाहिये वही है शाहंशाह ॥

वह कैसा शाहंशाह है कि—ताज क्या है, तख्त क्या है, अरे लाले जवाहिर क्या है, ये इश्क वाले तो खुदाई भी लुटा देते हैं। ये ऐसे ही मस्ताने-दिवाने होते हैं जो सदा अपनी मस्ती में डूबे रहते हैं। कौन सी मस्ती में डूबे रहते हैं।

एक ताई के आलम में हरदम चूर रहता हूँ मैं।
दूई वालों से लाखों कोस दूर रहता हूँ मैं॥
जो अनलहक कहे तो उसके संग जरूर रहता हूँ मैं।
बन के पेसानी में उसके नूर रहता हूँ मैं॥

ऐसे मस्ताने साधक अद्वैत ब्रह्म अवस्था को प्राप्त होते हैं तथा सारे जगत को ब्रह्ममय देखते हैं तथा आज्ञाचक्र में प्रकाशमय रूप में अपने स्वरूप में स्थित हो जाते हैं तथा भीतर-बाहर सब ब्रह्म-मय दृष्टिगोचर होने लगता है। आज्ञाचक्र को ही पेसानी कहते हैं तथा वही खुदा का नूर नूरे इलाहो जिसे भारतीय संस्कृति में ब्रह्म प्रकाश एवं ईसाई मत के अनुसार डिवाइन लाइट कहते हैं स्थित है। ये नूर कब नजर में आया।

दूई का परदा हटा तो एक ताई नजर आई।
न वो बाबा नजर आया न वो माई नजर आई॥

तो आखिर नजर क्या आया।

कहो किसे देखूँ देखा आलम में कुल हमी तो हैं।
कहीं पर गुल है हम कहीं पर आशिके बुलबुल हमी तो हैं॥
कहीं बने अनल हक हम कहीं पर मंसूर और दार हैं हम।
कहीं सरमद बने हम कहीं पर सर लेने को तलवार हैं हम॥
कहीं शम्स तबरेज कहीं खुरसेद उसी के यार हैं हम।
कहीं पर एक हैं हम कहीं पर देखो बे सुमार हैं हम॥
कहीं लैला बने हम कहीं मजनू की मूरत हैं हम।
कहीं फरहाद बन बैठे कहीं पर शीरी की सूरत हैं हम॥

कहीं मन्दिर कहीं मस्जिद कहीं काबा व किबला हैं हम।
कहीं बने नजूमी हम कहीं जोतिष महूरत हैं हम॥
जितने भी दीन हैं जहाँ में सब अपने ही जानो।
मका है ला मका हम जाहिर भी हैं और पिनहा भी॥
कहीं तन पर रमाये खाक वन-वन में फिरते हैं हम।
कहीं सुमिरन है हम कहीं सुमिरन में फिरते हैं हम॥
जिधर देखो उधर हम हैं हमी हर जा पै रहते हैं।
हमी दम हैं हमी हम-दम हमी हर मन में फिरते हैं॥
तवक चौदा के ऊपर इक मका है ला मका अपन अपना।
वही कायम है हम और यह शखुन इस जाँ पै कहते हैं॥

तबक चौदा के ऊपर जहाँ मैं रहता हूँ उसे दर्शाते हुए गुसानन्दजी पिण्ड में स्वरूप का बोध कराते हुए कहते हैं कि—

मूल चक्र महं गणेश विराजत, स्वाद चक्र महं कियो अज वासा।
नाभि कमल में विष्णु-विशम्भर, हृदय कमल महं महादेव निवासा।
कण्ठ कमल में बसे देवी नित, त्रिकुटी कमल महँ सूर्य उजासा।
सहस्र कमल दल आप विराजत जाके प्रकाश सभे प्रकाशा।
मम गुप्त स्वरूप से न्यारो नहीं कछु काको नमाउँ कहो अब माथा।

वही बात,

कह यारी और न दूजा, आपही साहब आपही पूजा।

श्री कबीरदासजी अपने इसी स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि—

मेरी नजर में मोती आया है।
करके कृपा दयानिधि सद्गुरु घट के बीच लखाया है।
कोई कहे हलका कोई कहे भारी सब जग मरम भुलाया है।
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हारे पार न कोई पाया है।
शारद शेष सुरेश दिनेश गनेसहु बहु विधि जासु गुन गाया है।

नेति-नेति महिमा बरनत वेदहु मन सुख जाया है।
दूइ दल चतुर अष्ट-अष्ट-दस-द्वादस संहस कमल विचकाया है।
ताके ऊँपर आप विराजे अद्भुत रूप धराया है।
है तिल के झिलमिल तिल भीतर ता तिल बीच छिपाया है।
तनका आड़ पहाड़ सी भासे परम पुरुष की छाया है।
अनहद की धुन भवँर गुफा में अति घन घोर मचाया है।
बाजे बजे अनेक भाँति के सुन के मन ललचाया है।
पुरुष अनामी सबके स्वामी रच निज पिण्ड समाया है।
ताकी नकल देख माया ने यह ब्रह्माण्ड रचाया है।
यह सब काल जाल को फन्दा मन कलपत ठहराया है।
कहे कबीर सत्पद सद्गुरु न्यारा कर दर्शाया है।
मेरी नजर में मोती आया है।
करके कृपा दयानिधि सद्गुरु घट के बीच लखाया है।

× × ×

और क्या नजर आया।
मुर्शद नैनो बीच नबी है, स्याह सफेद तिलो विचतारा
अवगत-अलख रवि है।
आँखो मद्धे पाँखी चमके पारवी मद्धे तारा।
तेही द्वारे दुरबीन लगावे उतरे भवजल पारा।
शुन्य शहर में बास हमारो तहा सर्वंगी जावे।
कहे कबीर सत्पद सद्गुरु न्यारा कर दर्शावे।
उलटा कुआँ गगन में तामें जरे चिराग।
तामे जरे चिराग बिना रोगन विन बाती।
छहो ऋतु बारहो मास रहे जलता दिन राती।
सद्गुरु मिला जो होय ताही के नजर में आवे।
निकले एक आवाज चिराग की जोती माही।

ज्ञानी समाधी सुने और कोई सुनत नाहीं।

उस ज्योति पुञ्ज से क्या आवाज निकलती है देखें—

मानस सोहं अस्मि इति वृत्त अखण्डा।
दीप शिखा सोई परम प्रचण्डा॥
आतम अनुभव सुख-सुप्रकाशा।
तब भव मूल भेद भ्रम नाशा॥

अब प्रश्न यह उठता है कि मैं अपने इस स्वरूप को किस प्रकार भूल गया तथा संसारी बन कर नाना दुखों को क्यों प्राप्त हो रहा हूँ। यह एक ऐसी कहना है जिस पर सहज ही विश्वास नहीं होता। देखें—गोस्वामी जो के शब्दों में—

सुनहु तात यह अकथ कहानी, समुझत बनई न जात बखानी।
ईश्वर अंश जीव अविनाशी, चेतन अमल सहज सुखराशी।
सो माया बस भयऊ गोसाईं, बधो कीर मरकट की नाईं।
जड़ चेतन ही ग्रन्थि परि गई, जदपि मृखा छूटत अति कठिनई।
जबसे जीव भयो संसारी, छूटि न ग्रन्थि न होय सुखारी।
श्रुति-पुरान बहु कहे उपाई, छूटि न अधिक-अधिक अरुझाई।
जीव हृदय तम मोह बिसेखी, ग्रन्थि छुटी किमि परई न देखी।
अस संयोग ईश जब करही, तबहु कदाचित् सो निरुअरही।
सात्विक श्रद्धा धेनु सोहाई, जो हरी कृपा हृदय बस आई।
जप-तप व्रतयम नियम अपारा, जे श्रुति कह शुभ धर्म अचारा।
तेहि तृन हरित चरै जब गाई, भाव वच्छ शिशु पाई पेन्हाई।
नोई निवृत्त पात्र विस्वासा, निर्मल मन अहीर निज दासा।
परम धर्म मय पय दुहि भाई, अवटे अनल अकाम बनाई।
तोष मरुत तवछमा जुड़ावे, घृति सम जावनु देई जमाई।
मुदिता मथे विचार मथानी, दम अधार रजु सत्य सुवानी।
तब मथ काढ़ लेऊ नवनीता, विमल विराग-सुभग सुपुनिता।

योग अगिन कर प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाइ ।
बुद्धि सिरावे ज्ञान घृत ममता मल जर जाइ ॥
तब विज्ञान निरूपिनी बुद्धि विषद घृत पाइ ।
चित्त दिया भर घरे दृढ़ समता दियट बनाइ ॥
तीन अवस्था तीन गुन तेहि कपास से काढ़ि ।
तुलि तुरिय-सवारि पुनि बाती करे सुगाढ़ि ॥
यही विधि लेसे दीप तेज राशि विज्ञान मय ।
जातही जासुं समीप जरही मदाधिक सलभ सब ॥

सोहं अस्मि इति वृत्ति अखण्डा, दीप शिखा सोई परम प्रचण्डा ।
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा, तब भव मूल भेद भ्रम नासा ।
प्रवल अविद्या कर परिवारा, मोहतम सब मिटहि अपारा ।
तब सोई बुद्धि पाइ उजियारा, उरगृह बैठि ग्रन्थि निरु आरा ।
छोरन ग्रन्थि पाव जो सोई, तब यह जीव कृतारथ होई ।
छोरत ग्रन्थि जानि खग राया, विघ्न अनेक करइ तब माया ।
रिद्धि-सिद्धि वहु प्रेरहि भाई, बुद्धि ही लोभ दिखावहि आई ।
कल बल छल करि जाई समीपा, अचल बात बुझावही दीपा ।
बुद्धि होइ जो परम सयानी, तिन तह चितवन अनहित जानी ।
जो विघ्न बुद्धि नहीं कर वाधी, तब बहोरि सुर करहि उपाधी ।
इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना, जहँ-तहँ सुर बैठे करी थाना ।
आवत देखि विषय बयारी, ते हठ देहि कपाट उघारी ।
जब सो प्रभंजन उरगृह जाई, तब ही दीप विज्ञान बुझाई ।
छुटा न ग्रन्थि मिटासो प्रकाशा, बुद्धि विकल भइ विषय बताशा ।
इन्द्रिय सुरनन ज्ञान सोहाई, विषय भोग पर प्रीत सदाई ।
विषय समीर बुद्धि कृत मोरी, तेहि विधि दीप को वारि बिहोरी ।

फिर जीव विविध विधि पावहि संस्कृत क्लेश ।
हरि माया अति दुस्तर तरि न सके बिहगेस ।

कहत कठिन-समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होइ घुणाक्षर न्याय जो पुनि प्रत्यूक अनेक।

ज्ञानपंथ कृपान के धारा, परत खगेस होइ नहीं वारा।
जो निर्विघ्न पंथ निर्वही, सो कैवल्य परमपद लहही।
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद, सन्त पुरान, निगम आगम वद।

इस प्रक्रिया से साधक जब साधना-रत होकर सभी विघ्न-बाधाओं को पार कर जाता है तब वह पुनः अपने आत्मस्वरूप को प्राप्त होता है। यही है वह एक रस ज्ञान जिसे जान लेने पर सारी भव-बाधायें दूर हो जाती हैं। और जीव अपने शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप का बोध कर लेता है। यथा—

अब मोहे फेरि-फेरि आवत हाँसी।
सुख समूह सुख को ढूँढ़त, जल में मीन पियासी।
सबही होतो है आतम चेतन अज-अखण्ड अविनाशी॥
निश्चय करे न निज स्वरूप को धावत है मक्का अरु काशी।
निर्भय राम-राम कृपा से काटी लख चौरासी॥

यदि आप भव बाधा को दूर करना चाहें, चौरासी से पार होना चाहें, तो आप अपने आत्म-स्वरूप का बोध कर लें। यह तभी सम्भव है, जब होइ ज्ञान एक रस-ईश्वर ही जीव भेद कस।

उपसंहार

श्री स्वामी आद्य शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित विचार के अन्तर्गत कुछ शंका समाधान।

१. भारतीय वेदान्त शास्त्र का अनुभव से सिद्ध मत है—'सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, सोऽहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ईश्वर हूँ, सच्चिदानन्द घन परमात्मा हूँ तथा मृत्यु-अज्ञान-दुःख

केवल उपलक्षण हैं, कल्पित हैं जो बाह्य कारणों से उत्पन्न होते हैं तथा बाहर से ही आते हैं, ऐसी अवस्था में साधक को आत्मोलब्धि के लिए कुछ करने (श्रवण-मनन-निदिध्यासन) की क्या आवश्यकता है। क्या अज्ञान व असुख उष्ण जल की उष्णता के समान कुछ समयोपरान्त स्वतः नहीं समाप्त हो जायेंगे ?

इसका उत्तर यह है कि यदि उष्णजल को अग्नि से हटा कर रख दिया जाय तो कुछ समय के बाद जल स्वतः ठण्ठा हो जायेगा। परन्तु यदि जल के नीचे से आग नहीं हटाई जायेगी तो जल ठण्डा नहीं होगा वरन् वह और अधिक गरम होता जायेगा; उसी प्रकार यदि अज्ञान एवं असुख के जो-जो भी कारण हैं वे यदि बने रहेंगे और बने रखे जायेंगे तो हमारा दुःख कम ही कैसे होगा, अपितु और बढ़ता जायेगा, फिर हम अपने अनन्त स्वरूप घन परमात्मा का योग नहीं प्राप्त कर सकेंगे। अतः इन दुःखों को दूर करने के लिए तथा आत्मसाक्षात्कार के लिए साधन श्रवण मनन-निदिध्यासन आवश्यक हैं।

२ दूसरा प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि जब ईश्वर ही सत्य है और बाकी सब मिथ्या है तो हम दो मिथ्यायों में से अर्थात् पुण्य एवं पाप इन दो मिथ्यायों में से पाप का त्याग एवं पुण्य का ग्रहण, ऐसा पंक्ति भेद क्यों करें ? इसका उत्तर संस्कृत के इस नीति वाक्य में दिया गया है—

कण्टकं कण्टकेनैव गरेण च यथा गरम्।

आपके तलवे में यदि कोई काँटा गड़ जाय तो आप यह चाहेंगे ही कि यह कांटा निकाला जाय और उससे होनेवाली पीड़ा दूर की जाय।

यह काँटा कैसे निकालोगे ? सुई से, पिन से अथवा अन्य किसी काँटे से ही। यह नहीं कहोगे कि यह भी काँटा है और वह भी

काँटा है, दोनों ही काँटे हैं उनमें भेद क्यों करें। है तो दोनों काँटे ही पर एक काँटा दुःख देनेवाला है तथा दूसरा दुःख दूर करने वाला है। इसी प्रकार कोई डाक्टर किसी विषय को नष्ट करने के लिए जो दवा देता है वह उस विष को मारने वाला प्रति विष (एण्टी डोट) ही होता है जो उस विष से अधिक उग्र विष होता है। इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ही विष हैं पर दोनों में बड़ा भारी अन्तर यह है कि एक विष प्राण लेनेवाला है तथा दूसरा प्राण बचाने वाला है। पाप-पुण्य की ठीक यही बात है, दोनों ही मिथ्या हैं और एक-से ही मिथ्या हैं, पर दोनों में अन्तर यह है कि पाप का–मिथ्यात्व का शास्त्र एवं अनुभव से भी सिद्ध। रूप दुःख है जो पीड़ा पहुँचाता है तथा दुःख देता है और पुण्य के मिथ्यात्व का (शास्त्र एवं अनुभव से सिद्ध) रूप सुख है जो दुःख को दूर कर सुख पहुँचाता है। यदि दुःख ग्रहण करने में आपको कोई आपत्ति न हो तो पाप ग्रहण करने में भो कोई आपत्ति नहीं, पर यदि आप सुख चाहते हैं तो आपको पुण्य करना होगा और फिर अपने शास्त्र यह बतलाते हैं कि पहला काँटा जब दूसरे काँटे से उखड़ जाता है तब जैसे दोनों काँटे फेंक दिये जाते हैं वैसे ही जब पुण्य-पाप का प्रतिबिम्व बन कर उसे नष्ट कर अपना काम पूरा कर लेता है तब पाप और पुण्य दोनों को फेंक देना होता है। उभे पाप पूण्ये विधुप।

दूसरा प्रश्न जो जिज्ञासू कर सकता है यही नहीं बल्कि जिज्ञासू को करना भी चाहिए वह यह है कि अच्छा यदि आगे फिर कोई पाप न किया जाय और इस तरह दृष्टान्तगग जल के नीचे से आग हटा ली जाय तो जल अपने आप ठण्डा होगा। यदि होगा तो केवल इतना कहना क्या पर्याप्त नहीं है कि अब आगे कोई पाप मत करो। आत्म-साक्षात्कार और उसके साधन के तौर पर आत्मा और परमात्मा के साथ उसके तादात्म्य के वास्तविक

स्वरूप का श्रवण-मनन-निदिध्यासन क्यों आवश्यक बतलाया गया है।

इस प्रश्न का उत्तर द्विविध है।

१. हाँ, यदि आग बिल्कुल हटा ली जाय और सदा के लिए हटा दी जाय तो जल अवश्य ठण्डा होगा, पर इसके ठण्डा होने में जो समय लगेगा वह आपको इच्छा के अधीन नहीं होगा, बल्कि जिस ताप तक जल पहुँचा होगा उसी पर निर्भर करेगा। परन्तु यदि आपको ऐसी प्यास लगी है कि रहा न जाय और जल ठण्डा होने तक ठहरना असह्य हो तो आप जल के ठण्डा होने की प्रतीक्षा नहीं करेंगे परन्तु जल को ठण्डा करने का उपाय ही करना होगा जैसे जल को पात्र से दूसरे पात्र में डालना अथवा बर्फ या ठण्डे पानी पर रख कर उसे ठण्डा करेंगे जिससे जल शीघ्र ठण्डा हो जाय। वही बात यहाँ भी है, हम लोगों ने पाप पर पाप करके पापों के ढेर लगा दिये हैं केवल इसी जन्म में नहीं, बल्कि जो असंख्य जन्म पहले बीत चुके हैं उनमें यही करते आये हैं और इसी कारण राशि-राशि दुःख-क्लेश और दुर्गति हमारे हिसाब में हमारे नाम बाकी है। यदि इन सब पापों के समाप्त होने तक सारा समय हम इनके नष्ट होने की प्रतीक्षा में ही बिता सके और आगे बिना कोई पाप किये रह सकते हैं तो हमें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु हम इसे असम्भव समझते हों और इन सारे बखेड़ों से शीघ्र छुटकारा पाना चाहते हों तो दुःख दूर करने का औषधोपचार आवश्यक है। यदि हमें किसी प्रकार दुःख-सन्ताप न हो तथा हम शाश्वत सुख शान्ति का अनुभव करते हों तो मुझे कुछ भी औषधोपचार की आवश्यकता नहीं है। अब हमें कुछ करना शेष नहीं है हमने अपना लक्ष्य पा लिया है। दर्पण में देखने से यदि कोई आपत्तिजनक प्रतिबिम्ब नहीं दिखायी देता है तो हमें अपनी आँख बन्द करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कोई

आपत्तिजनक प्रतिबिम्ब दिखायी पड़ता है तो हमें अपनी आँख बन्द कर लेनी ही पड़ेगी। ठीक वही बात यहाँ पर भी है कि हम दुःखी सन्तप्त हैं, शाश्वत सुख-शान्ति नाम की कोई वस्तु नहीं है तो हमें इससे छुटकारा पाने का उपाय करना ही होगा जैसे हमने गरम जल को ठण्डा करने का उपाय किया था। उसी प्रकार हम श्रवण-मनन-निदिध्यासन रूपी औषधि का पान कर समस्त पापों एवं दुःखों से छुटकारा पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।

२. और फिर गरम जल के नीचे से आग को हटाने का अभिप्राय यहाँ क्या है। इस प्रश्न का उत्तर तब ठीक तरह से बन सकता है जब यह ठीक तरह से समझ में आ जाय कि दृष्टान्तगत आग क्या है ? शास्त्र कहते हैं—

"ह्येवं अविद्याकामकर्मभिर्जन्म" और अपने अनुभव से भी यह सिद्ध होता है कि हम तीन बातों से फँस जाते हैं, बँध जाते हैं, जिनके कारण हमें बार-बार इन विविध शरीरों में जन्म लेना पड़ता है फिर अपने अशाश्वत मर्त्य शरीर में बद्ध होकर हम लोग अपने सदात्मा का परमात्मत्व ही भूल जाते हैं। ये तीन बातें क्या हैं ? ये तीन बातें हैं—(१) अपने अनन्त स्वरूप के विषय में अज्ञान या अविद्या और (२) इस कारण से सांसारिक तुच्छ एवं अनित्य पदार्थों की इच्छा या काम और (३) इन कामों की पूर्ति के लिए नानाविधि मूर्खतापूर्ण कर्म। अविद्या से काम उत्पन्न होते हैं और काम से कर्म और फिर इन कर्मों के फल भोगने के लिए विविध शरीरों में जन्म लेना पड़ता है, शरीर से और इन्द्रिय-मन-बुद्धि से तथा संसार से बद्ध होना पड़ता है। अतः जन्म बन्धन का मूल कारण जो अविद्या है, उसका जब तक नाश नहीं होगा तब तक बन्धन कदापि नष्ट नहीं हो सकता अर्थात् यहाँ जो आग हटानी है वह आत्मोपलब्धि के आनन्द-वारि के नीचे से अविद्या रूपी अग्नि को हटाया जाना है और जब तक हम श्रवण-

मनन-निदिध्यासन के द्वारा इस अविद्या रूपी अग्नि को नहीं हटा देते तब तक दृष्टान्तगत अग्नि बनी ही हुई है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रवणादि साधन क्यों आवश्यक है ?

फल

श्री भगवान् के पूजन में अपने चित्त की वृत्ति कैसी होनी चाहिए, इस विषय में शास्त्र का यह ज्ञान है।

सोऽहं भावेन पूजयेत्।

भगवान् के साथ तादात्म्य भाव करके भगवान का पूजन करें। इस प्रकार जिसका चित्त तादात्म्यभूत हुआ है उसके विषय में श्रीमद्भागवत का वचन है।

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

भगवान् का उत्तम भक्त वह है जो सब भूतों में भगवान् को और अपने आपको देखता है और सब भूतों को भगवान् में और अपने आपमें देखता है और श्रीमद्भगवद्-गीता में श्री भगवान् स्वयं कहते हैं—

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

विरलों में विरला वह महात्मा है जो सब पदार्थों को वासुदेव रूप में सर्वव्यापक श्री भगवान् के रूप में देखता है। ऐसे ही पुरुष के विषय में यमराज अपने दूतों से कहते हैं—

सकलमिदमहं च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एक।
इति मतिरचलाभवत्यनन्ते हृदयगते व्रजतान् विहाय दूरात्॥

यह सारा विश्व और मैं वही एक वासुदेव सर्वव्यापक परम-पुरुष परमेश्वर है, ऐसी जिनकी हृदयगत अनन्त में अचला मति है उन्हें दूर से ही देखकर चल दो—उनके पास न जाओ। क्योंकि वे मृत्यु को पार कर चुके हैं और अब तुम्हारे या मेरे अधिकार-क्षेत्र में नहीं है।

यह दिव्य फल कैसे प्राप्त होता है उसका अब विचार करें।

कारण मीमांसा

ज्ञान की इस अवस्था को जब हम प्राप्त होते हैं और केवल निष्काम कर्म करते हैं, तब हम कर्म केवल इसलिए करते हैं कि उन कर्मों को करना हमारा कर्तव्य है, इसलिए नहीं कि उन कर्मों या उनके फल में कोई आसक्ति हो और इसका फल यह होता है कि पाप और दुःख की जो प्रभूत राशियाँ हम लोगों ने कमा कर इकट्ठी कर रखी हैं वे जल कर भस्म हो जाती हैं। अविद्या का न होना ही काम न होना है, काम का न होना ही कर्म का नहीं होना है और कर्म का न होना ही जन्म का न होना है, अर्थात् जन्म-मरण का जो यह चक्र है वह पीछे छूट जाता है और मोक्ष प्राप्त होता है।

इस प्रकार कोई नया कर्म नहीं होता पर पिछले कर्मों का क्या होता है। वेदान्त सूत्र इसका उत्तर देता है—

'तदधिगम उत्तरपूर्वाधंयोरश्लेषः।'

अर्थात् ज्ञानी का संचित कर्म जल जाता है या नष्ट हो जाता है उसका आगामी कर्म निष्काम होने के कारण रह ही नहीं पाता अर्थात् उसे जन्म प्राप्त करानेवाला बन्धन नहीं बनता और जो प्रारम्भ कर्म (कर्म का वह भाग जिसके कारण यह जन्म हुआ है और जिसने फल देना आरम्भ किया है) वह भी इसी जन्म में भोग देकर नष्ट हो जाता है। अब यह ऐसी अवस्था हुई जैसी उस मनुष्य की होती है जिसका बैंक में जमा रुपया नष्ट हो गया, नयी कमाई जिसकी कुछ भी न हो और पास जो रुपया खर्च के लिए रखा था वह भी खर्च हो गया अर्थात् जो सब तरह से ठन-ठन गोपाल हो गया हो। संचित नष्ट हो गया, आगामी कुछ है नहीं, प्रारब्ध का भी क्षय हो गया, कोई कर्म ही बाकी नहीं रह गया जिसके कारण उसे पुनः जन्म लेना पड़े। तब आगे उसकी क्या गति होती है? वेद कहते हैं।

उस भगवत्-स्वरूप के साथ उसका पुनर्मिलन होने में उतना विलम्ब है, जितने में उसका प्रारब्ध भी क्षय हो जाय और वह भी जब हो गया तब—

न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति।

उसके प्राण बाहर निकल कर उसे अन्य लोक में नहीं ले जाते क्योंकि कहीं कोई कर्म करने के लिए शेष नहीं रह जाता। तब—

अत्र ब्रह्म समश्नुते।

वह ब्रह्म को प्राप्त होता है। सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् सर्वेश्वर के साथ यही एक हो जाता है। कोई व्यावहारिक दृष्टान्त लेकर यह बात स्पष्ट की जा सकती है। कोई कैदी है—मान लीजिये—जो छोड़ा नहीं गया है, बल्कि एक जेल से दूसरे जेल में भेजा जाता है उसके साथ पुलिस की गारद रहती है और उसे यहाँ से वहाँ पहुँचाती है। पर जब वह छोड़ दिया जाता है तब उसके साथ गारद नहीं रहती। इस प्रकार जब जीव मुक्त नहीं किया जाता बल्कि एक शरीर रूपी कैदखाने से दूसरे शरीर रूपी कैदखाने में भेजा जाता है तब प्राण (पुलिस की गारद की तरह) उसके साथ वहाँ जाते हैं पर जब वह सर्वथा मुक्त हो जाता है तब प्राण उसे कहीं ले जाने के लिए उसके साथ नहीं जाते क्योंकि उसको किसी खास जगह जाना नहीं है, वह तो स्वयं अनन्त परमात्मा के साथ ही एक हो गया।

इस प्रकार यदि हम अपने प्राचीन महर्षियों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलें तो हम लोग जहाँ से गिरे हैं वहीं अर्थात् ईश्वर में पहुँचेंगे। हम आकाश-वायु अग्नि-जल और पृथ्वी में आ गिरे थे और अब 'जनि विपरीत क्रम का' अनुसरण कर हम अपने कैवल्य को प्राप्त हो सकते हैं। इस प्रकार अधोगत जीव का ऊर्ध्व की ओर विकास पूर्ण होता है और उस मानव जीवन का महान उद्देश्य सिद्ध होता है, जिस मानव जीवन के द्वारा हमें पदार्थों को समझने,

सद्सत् का विवेक करने और सत्कर्म करने का महान अधिकार प्राप्त हुआ है। अन्य योनियाँ—पशु-पक्षी-कृमि-कीटादि तथा देव-योनियाँ भी केवल भोग-भूमियाँ है। उन योनियों में हम केवल वही कर सकते हैं जिसे करने के लिए हम अपने पूर्व कर्म से बँधें हैं और उन्हीं फलों को भोग सकते हैं जो पूर्व कर्मों के फल हैं, परन्तु मनुष्य शरीर कर्म-क्षेत्र है। इसके द्वारा हम न केवल प्राक्तन और वर्तमान कर्मों के फल ही भोगते हैं, परन्तु ऐसे नये कर्म भी कर सकते हैं, जो हमारे लिए मोक्ष के द्वार भी खोल दे। इसलिए हमें जो यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है, यह वास्तव में सबसे बड़ा अधिकार प्राप्त हुआ है। इसलिए जब तक हम लोग इस मानव देह के साथ इस लोक में हैं, तब तक यह काम बना ले कि अपने अन्तःस्थित्त परमात्मा पर अपनी दृष्टि स्थिर और एकाग्र हो जाय। यदि ऐसा किया जाय तो हम लोग सन्मार्ग पर है और अपने लक्ष्य को निश्चय प्राप्त करेंगे। यह कहना ठीक नहीं है कि हमें प्रपञ्च सम्बन्धी बहुत से काम करने पड़ते हैं और इसलिए इन पारमार्थिक बातों के लिए हमें अवकाश नहीं मिलता। वेदान्त यह तो नहीं कहता कि अपने कर्तव्यों का पालन मत करो या कर्तव्यों का परित्याग कर इस रास्ते पर आओ। प्रत्युत वेदान्त तो अपने कर्तव्यों का और इन कर्तव्यों का पालन करते हुए ही मन को इस ओर लगाना सीखता है। यही इसका कौशल हैं। जनक राजा थे, वे ऐसे ही कर्मयोगी थे, उन्होंने अपने राजधर्म सम्बन्धी किसी भी कर्तव्य-कर्म की कभी किञ्चित् भी कोई उपेक्षा नहीं की, तथापि राजधर्म का यथाविधि पालन करते हुए भी उनका ध्यान परमात्मा में लगा रहता था। परमेश्वर के साथ अपना एकत्व अनुभव करने का यही मार्ग है।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

तृतीय सोपान

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्‌गुरुं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥

विषय

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।
सत हरि भजन जगत सब सपना ॥

—भजन एवं सत्संग रूपी मणि

बन्धुगण ! आज उपरोक्त विषय पर प्रकाश डालने की चेष्टा कर रहा हूँ। एक बार माता पार्वती ने विनम्र भाव से करबद्ध होकर भगवान् शंकर से पूछा कि हे प्रभो ! इस जगत में सत्य क्या है, इसके सम्बन्ध में अपना अनुभव सुनाने की कृपा करें। भगवान् शंकर ने पार्वती जी से कहा—इस चराचर विश्व में जितने भी व्यापार हैं तथा उसके अन्तर्गत जो भी सौदे बाजार में हो रहे हैं उनमें केवल हरि का भजन ही सत्य है शेष संसार के सभी प्रपंच असत्य हैं। मेरा अपना अनुभव है तथा यही सर्वशास्त्र-सम्मत मत है। एक समय भारतवर्ष में ऐसा भी था जब माता अपने पुत्र को जन्म के समय से ही इस अमर सन्देश को पालने में लोरी गा-गा कर सुनाती थी तथा जीवन के आरम्भकाल से ही संसार को अनित्यता एवं हरि-भजन की सत्यता को लखाकर अनित्य संसार से आसक्ति को हटाकर नित्य परमात्मा के भजन में लगा, उन्हें भवसागर से मुक्त होने की प्रेरणा प्रदान करती थी। रानी मदालसा अपने पुत्रों को लोरी गा-गा यही सुनाती थी—

शुद्धोसि बुद्धोसि निरञ्जनोसि संसारमायापरिवर्जितोसि।
संसारस्वप्नं त्यज्य मोहनिन्द्रां मदालसावाक्यमुवाच पुत्रम्॥

अर्थात् हे पुत्र ! इस असार संसार में सिर्फ एक परमात्मा एवं उसका भजन ही सत्य है। तुम इस सत्य स्वरूप को समझो तथा उनके भजन में ही अपने को लगाओ, क्योंकि शेष सभी संसार अनित्य है, स्वप्नवत् है तथा माया में परिप्लुत है। यह निर्विवाद सत्य है। अतः अपनी मोह निद्रा को त्यागकर भजनरूपी सच्चा व्यापार ही इस संसार में कर, जिससे तू अमरत्व को प्राप्त कर लेगा तथा सांसारिक भवबाधाओं को पारकर नित्य परमात्मा को प्राप्त कर लेगा। परिणामतः बच्चे इस अमर सन्देश को जीवन में चरितार्थ कर परमपद को प्राप्त हुए। एक समय यह भी है जब इस अमर सन्देश को हमारे माता-पिता हमें कब सुनाते हैं जबकि सारा खेत चरकर चिड़िया फुर से उड़ जाती है तो सगे-सम्बन्धी तथा पड़ोसी इकट्ठे होते हैं, बाँस की चारपाई बनाई जाती है, नहला-धुलाकर कफन पहनाकर चार जने मिलकर जब कन्धे पर लेते हैं तब सुनाते हैं 'राम नाम सत्य है' वह भी कहाँ तक ? घर से श्मशान घाट तक, फिर सारा खेल समाप्त। यदि कोई महापुरुष इस अमर सन्देश को 'राम नाम सत्य है' बच्चा पैदा होने के समय, विवाह आदि शुभ अवसर पर कहने सुनाने का साहस करे तो इस दुनियावाले उस महापुरुष को मार-मारकर वहाँ से उसे फौरन भगा देंगे कि अशुभ बोल रहा है। यह तो इस संसार की गति है कि—

साँच कोई न पतिअई, झूठो जग पतियाय।
गलीगली गोरस फिरे, मदिरा बैठि बिचाय॥

परिणाम यह देखने को मिलता है कि हम सत्य का दर्शन नहीं कर पाते हैं तथा संसाररूपी कालचक्र में फँसकर अधम से अधम

गति को प्राप्त हो रहे हैं तथा चारों ओर अशान्ति, असन्तोष एवं दुःख व्याप्त है। हम जीवन के शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप को प्राप्त करने में असमर्थ ही रह जाते हैं जबकि यह निर्विवाद सत्य है कि जीवको जो भवरोग लग गया है वह जब तक दूर नहीं होगा तब तक हरि का भजन नहीं होगा।

वारि मथे बरु होय घृत, सिकता से बरु तेल।
बिन हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल॥

अर्थात् जीव का कल्याण तभी होगा जब उसका भवरोग दूर हो जाय और भवरोग बिना हरि भजन के कदापि दूर नहीं हो सकता। भजन के लिए हमें तीन बातें जाननी आवश्यक हैं। सर्व-प्रथम हमें अपना लक्ष्य निश्चित करना होगा कि हमें जाना कहाँ है, पाना क्या है तथा जानना क्या है? तो हमारा लक्ष्य क्या है? भजन। तो भजन किसका होगा? भगवान् का—हरि का। तो, पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि भगवान् कहते किसे हैं, भगवान् रहते कहाँ हैं तथा उनका स्वरूप क्या है? इसके पश्चात् दूसरी बात हमें जाननी होगी कि उस लक्ष्य तक पहुँचने का सीधा मार्ग क्या है। सीधा मार्ग से तात्पर्य है जो मार्ग वेद-पुराण शास्त्र एवं सन्त-मत के अनुसार अनुमोदित एवं प्रमाणित हो। इसके पश्चात् तीसरा जो प्रमुख कार्य हमको करना है वह यह कि हम अपना लक्ष्य एवं मार्ग जानकर दृढ़प्रतिज्ञ होकर उस ओर मुख करके चलना प्रारम्भ कर देंगे तो हमें अपने लक्ष्यतक पहुँचने में अवश्य सफलता प्राप्त हो जायेगी। उपर्युक्त तीनों बातों में से यदि एक का भी अभाव होगा तो हम अपने लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर सकेंगे। जैसे यदि लक्ष्य निश्चित नहीं है तो कहीं आने-जाने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। यदि लक्ष्य मालूम है परन्तु उस लक्ष्य तक पहुँचने का सीधा मार्ग नहीं मालूम है तो हम उलटा

मार्ग पकड़ लेंगे और लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पायेंगे वरन् उससे दूर हटते चले जायेंगे। यदि लक्ष्य भी ज्ञात है तथा उस तक पहुँचने का सीधा मार्ग भी ज्ञात है, फिर भी यदि हम उस पर चलना प्रारम्भ नहीं करें, रुके ही रहेंगे तो भी हम लक्ष्य को नहीं प्राप्त कर पायेंगे। अतः तीनों वस्तुओं का का आपस में सामञ्जस्य होना अनिवार्य है ऐसा हो जाने पर ही हमको सफलता प्राप्त हो सकती है। यथा—

राम भजा सो जीता साधो, राम भजा सो जीता।
हाथ सुमिरिनो बगल कतरनी पढ़े भागवत गीता॥
अन्तःकरण शुद्ध नहिं कीन्हा कहत सुनत दिन बीता।
राम भजा सो जीता साधो, राम भजा सो जीता॥

राम का क्या स्वरूप है सारे जगत् में ? जो यह चेतन मात्र प्रकाश स्वरूप आत्मा व्याप्त है वही राम है और यही राम है—प्राणी मात्र के अन्तःकरण में एकरस अखण्ड स्थिति है। यथा—

घट-घट मेरो साइयाँ सूनो सेज न कोय।
बलिहारी वा घट की जा घट में परगट होय॥

अर्थात् राम प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में समान रूप से स्थित हैं परन्तु दिखाई उसी में देते हैं, प्राप्त वही कर पाता है जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है। मन, इन्द्रियाँ वश में हो गयी हों तथा किसी प्रकार की आसक्ति एवं कामना शेष न रह गयी हों। ऐसे ही लक्षण वाला पुरुष उसे प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य कर लेता है। गीता में भगवान् श्रीकृष्णजी भी भगवान् के इसी स्वरूप को अर्जुन को लखाते हुए कहते हैं कि—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिस्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
इति ज्ञान म्याख्यातम् गुह्यादि गुह्यतरम्।
विमेश्वेत दशेषेण यथेच्छि तथा कुराम्।

अर्थात् हे अर्जुन शरीररूपी यन्त्र पर आरूढ़ होकर अन्तर्यामी परमात्मा हर प्राणी मात्र के अन्तःकरण में स्थित है तथा अपनी माया से सारे जगत को भरमा रहा है। हे अर्जुन, तू उस अन्तर्यामी परमात्मा के शरण में मन-कर्म-वचन से छल-कपट-प्रपञ्च को त्याग कर विशुद्ध अन्तःकरण से उसके सम्मुख अपने को आत्म समर्पण कर दे तो तुझे परमात्मा का शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप का बोध हो जायेगा। यह ज्ञान का गुप्त-से-गुप्त भेद है जिसको जानकर तू अपने जीवन को सार्थक एवं सफल बना ले। इस प्रकार यह निर्विवाद सत्य है कि परमात्मा हर प्राणी मात्र के अन्तःकरण में निवास करता है तो उसकी सबसे बड़ी एवं पहली भक्ति एवं पूजा यही है कि हृदयरूपी मन्दिर जो भगवान् का निवास स्थान है साफ-सुथरा रहे, उसमें किसी प्रकार विषय विकार न रहे तथा लोभ-मोह आदि रूपी जो मल जम गये हैं उन्हें साफ-सुथरा कर मन्दिर को हमेशा स्वच्छ रखोगे तो अन्तर्यामी परमात्मा की कृपा का अनुभव होगा तथा उनका प्रकाश प्राप्त होता रहेगा। दूसरी पूजा भगवान् की यह है कि जो भगवान् हमारे अन्तःकरण में स्थित है वही भगवान् हर प्राणी मात्र के अन्तःकरण में स्थित है। अतः हम उसको हर प्राणी मात्र में देखें तथा हर प्राणी मात्र के प्रति अहिंसा-भाव, दया-भाव, क्षमा-भाव एवं सेवा भाव बना रहे। तीसरी पूजा भगवान् की यह है कि कभी भूल कर भी, स्वप्न में भी निषिद्ध कर्म न हो। जिन कर्मों को शास्त्रों ने मनुष्य के लिए वर्जित किया है उन्हें ही निषिद्ध कर्म कहते हैं। भगवान् के सम्बन्ध में बस इतना जानना आवश्यक है,

यही पूरा अध्यात्मवाद है। इसके अतिरिक्त सब कङ्कड़-पत्थर है। अतः इस प्रकार उपर्युक्त तीनों बातों को ध्यान में रखकर भजन होगा तो विजय अवश्य प्राप्त होगी। इस प्रकार हमें यह ज्ञात होता है कि भगवान् हर प्राणी मात्र के अन्तःकरण में स्थित रहते हुए भी दिखाई क्यों नहीं पड़ते हैं? इसलिए कि हमारा हृदय रूपी आकाश विषय-विकार रूपी काले-काले मेघों से आच्छादित है इसलिए उसमें स्थित परमात्मा की जो अखण्ड ज्योति जल रही है उसका प्रकाश हमें नहीं मिल पाता। जिस प्रकार बरसात के मौसम में जब आकाश काले-काले बादलों से घिर जाता है तो आकाश में सूर्य उदित रहने पर भी पृथ्वी पर उसका प्रकाश नहीं पहुँच पाता है और जब तेज हवा के झोंके उन बादलों को उड़ा देते हैं तो पुनः हमें सूर्य का प्रकाश प्राप्त होने लगता है। उसी प्रकार जब साधना रूपी तेज हवा के झोकों से हम अपने हृदय स्थित विषय-विकार रूपी काल-काले मेघों को छाँट कर उड़ा देंगे तो अन्तर्यामी परमात्मा का प्रकाश स्वतः मिलने लगेगा। भगवान् हर प्राणी मात्र के अन्तःकरण में समान रूप से स्थित है 'है सबके लख विरले पाये'। उन विरलों में कौन उनको लख पाता है। श्रीभगवान् के श्रीमुख की वाणी—

निर्मल मन-जन सो मोहि पावा।
मोहे कपट, छल-छिद्र न भावा॥

आगे भगवान क्या कहते हैं सो भी सुनें। यथा—

कामी-क्रोधी-लालची इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करे कोई सूरमा जाति वरन कुल खोय॥

मन से सकल वासना भागी। केवल रामचरन लव लागी। सरल स्वभाव न मन कुटलाई। यथा लाभ संतोष विहाई। कहहुँ का बहु कथा बढ़ाई। एही आचरन बसौ मैं भाई।

ऐसे ही आचरण वाले विशुद्ध अन्तःकरण वाले व्यक्ति मुझको प्राप्त कर पाते हैं, क्योंकि मेरा निवास ऐसे ही विशुद्ध वातावरण में स्थित है। ऐसे ही राम दरबार की झाँकी को देखने का शुभ अवसर भरतजी को प्राप्त हुआ। जब वे चित्रकूट में रामजी को मनाने गये थे तो जिस वन प्रान्त में श्रीराम निवास करते थे वहाँ का क्या वातावरण, दृश्य था सो भी सुनें—

राम वास वन सम्पति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाय सुराजा॥
सचिव विराग विवेक नरेशू। विपिन सुहावन पावन देशू॥
भट-जप-नियम-शील रजधानी। शांति सुमति-शुचि सुन्दर रानी॥
सकल अंग सम्पन्न सुराऊ। रामचरन आश्रित चित-चाऊ॥

आशय यह है कि राम ऐसे ही सद्‌गुणों से सम्पन्न प्रदेश में निवास करते हैं और उस प्रदेश में निवास करने वाले प्राणी सच्चे सुख शान्ति का अनुभव प्राप्त करते हैं तथा सभी मन, कर्म, वचन से राम के चरनों में अनुराग कर सच्चे राम-राज्य के सुख का भोग करते हैं जिसे ब्रह्मसुख-भोग कहते हैं तथा वही सभी दृष्टिकोण से परिपूर्ण रामराज्य है जहाँ किसी प्रकार का पाप-ताप न हो। यथा—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज्य काहू नहिं व्यापा॥

इसी प्रकार के विशुद्ध अन्तःकरण वाला दैवी गुणों से सम्पन्न व्यक्ति ही परमात्मा का अन्योन्याश्रय शरणागति प्राप्त कर पाता है और जो ऐसा कर पाता है उसके लिए भगवान् की यह घोषणा गीता में की गयी है। यथा—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

इस प्रकार जो विशुद्ध अन्तःकरण से सभी धर्मों का आश्रय छोड़कर एक मात्र मेरा आश्रय ग्रहण कर लेता है उसे में सभी

तरह के पाप-ताप से मुक्त कर देता हूँ। मैं यह सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ। यह तो हुई भगवान् की बात तथा उनका आदेश। आइये, जरा अब हम अपनी ओर मुड़ कर देखें, अपने भीतर झाँक कर देखें, टटोलें कि क्या हमारा अन्त:करण श्री भगवान् के आदेशानुसार छल-कपट-प्रपञ्च से रहित होकर विशुद्ध हो गया है तो हर जगह से, बाहर-भीतर से यही आवाज सुनाई पड़ती है तथा यही दृश्य दिखाई देता है कि—

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिनने तन दियो ताही विसरायो ऐसो नमक हरामी।
भरि-भरि उदर विषय को धायो जैसे सूकरग्रामी॥

जी हाँ, यही नजरा जिधर घुमाइये, भीतर या बाहर आपको यही नजर आयेगा। हम चारों तरफ से विषय-विकार में लिप्त होकर सूकर-कूकर की गति को प्राप्त हो रहे हैं तथा इस दुर्लभ शरीर के द्वारा भजन रूपी व्यापार नाम मात्र को भी नहीं हो पा रहा है। नजर चारो तरफ क्या आ रहा है, इसका भी नजारा देखें।

ऐसा निन्दित कर्म नहीं है, जिसे न सतत कर आया हूँ।
जीवन की झोली में प्रभुजी कंटक कंकड़ भर लाया हूँ॥
लिये धूल कण काम क्रोध के यौवन की आँधी चलती है।
जीवन रस मादक मधु पीकर जहरीली नागिन पलती है॥
तिमिर मयी नीरव रजनी में भ्रान्त पथिक सा भटक रहा हूँ।
कानन शिला खण्ड पर कर्मों की गठरी मैं पटक रहा हूँ।
पथ पिच्छल है अन्धकार में खाई में गिरने का भय है।
अन्तस्थल में छिपी वासना का अभिनय मादक मधुमय है।
कांचन और कामिनी की क्रीड़ा से थका व्यथित जीवन है।
दुर्बल शक्तिहीन हूँ फिर भी प्रबल कामना का नर्तन है।

सदा वासना मेरे अन्तस्थल में प्रभु क्रीड़ा करती है।
माया शुभ्र वसन धारण कर मन मेरा मंथन करती है।
दूर करें इन भव तापों से प्रभू तेरी शरन में आया हूँ।
जीवन की झोली में प्रभु जी कंटक कंकड़ भर लाया हूँ।
ऐसा निंदित कर्म नहीं है जिसे न सतत कर आया हूँ।

दूसरा दृश्य भी प्रस्तुत है उसे भी देखें।

कासो का कहू घट ही में रंग लागा।
कपि सो चंचल मन नाचत हौ फसा विषय अनुरागा।
कठपुतरी सम इन्द्री नाचे कसे करम के धागा।
नाचत जीव अविद्या के बस पहिरे दुरमति बागा।
तोर-मोर की तारी बाजत तजत न लोभ अभागा॥
मारिय खाय निशंक चरत है जीव साँड जस दागा।
जनम-जनम से अमत-जमत मल बना हंस से कागा।
निको रहो समझ सो आया, गुरुदेव दया से जागा।
देखा श्याम सकल घट पूरन कतहू नहीं कछु खागा।
कासो का कहू घट ही में रंग लागा।

इससे छुटकारा किस प्रकार मिलेगा जब इस प्रकार की निकी समुझ प्राप्त हो जायेगी। निकी समुझ क्या है ?

अब लौ नसानी अब ना नसहिहों।
रामकृपा भव निशा, सिरानी

जिसकी इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा होगी कि अब से किसी प्रकार का निषिद्ध कर्म नहीं होगा तथा सांसारिक विषय-वासनाओं से विरति होने का दृढ़ संकल्प जागृत होगा उसी दिन जीव भगवान् के सम्मुख हो जाता है, संसार से विरति हो जाती है तथा जीव भगवान् की कृपा का अनुभव करने लगता है, उसी दिन से भव निशा समाप्त हो गयी और हमने सुप्रभात का दर्शन कर लिया।

भगवान् की यह वाणी इस अवसर पर विशेष कथनीय है। सन्मुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहु तबही। अर्थात् भगवान् कहते हैं कि जिस घड़ी से जीव संसार की तरफ पीठ करके मेरी ओर मुख कर लेता है उसी क्षण मैं उसे शरण में लेकर सारे पाप-ताप से छुड़ा कर उसे अभय कर देता हूँ। अब देखें कि क्या हम अपने को भगवान् के सन्मुख कर पाते हैं तो यही तथ्य सामने प्रकट होता है—हम ठीक इसके विपरीत भगवान् से विमुख होकर अपने पथ से भटक गये हैं तो फिर हमारी हालत क्या हो गयी है ? उसे भी देखें।

फिर जीव विविध विधि पावहि संसृत क्लेश।
हरिमाया अति दुस्तर तरि न सके विहगेश।
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक
होइ घुणाक्षर न्याय जो पुनि प्रत्यूक अनेक।

हरि की इस प्रचण्ड माया से हरि स्वयं विवश हो गये। कैसे विवश हो गये ?

सोऊ मुनि ज्ञान-निधान, मृग नयनी विधु मुख
निरखि विवश होई हरिजान, नारी विष्णु माया प्रकट।

जब यह माया प्रगट हुई तो इसने संसार में बड़े-बड़े महारथियों, शूर-वीरों तापस-ज्ञानी लोगों को भी नही छोड़ा। उनका शिकार किया। कैसे किया ?

यह माया रघुनाथ की निकली करन अहेरा। (तुलसी)
रमइया तोरी दुलहिन लुटले बजार। (कबीर)

देखें कैसे कैसों का इसने शिकार किया—लूटा, आप भी देखें।

ज्ञानी-तापस-सूर-कवि-कोविद गुन आगार।
केहि के लोभ विडम्बना कीन्ह यही संसार।।

श्रीमद वक्र किन्ह न केहि प्रभुता बधिर न काहि।
मृगनयनी के नयन सर को लागि न अस जाहि॥

व्याप रहेहु संसार महु माया कटक प्रचण्ड।
सेनापति कामादि भट-दंभ-कपट-पाखंड॥

सो दासी रघुबीर की मिथ्या समुझे सोपि।
छूटि न राम कृपा बिनु कहेहु नाथ पद रोपि॥

इस प्रचण्ड माया से वही महापुरुष बच पाता है जो सभी तरह का आश्रय छोड़कर एक मात्र भगवान् का आश्रय ग्रहण कर लेता है। भगवान का आश्रय ग्रहण करने पर माया किस प्रकार छूट जाती है, सो भी देखें।

इहाँ न पच्छपात कछु राखहुँ। वेद-पुरान-सन्त मत भाखहु।
मोह न नारि-नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥
माया भगति सुनहु तुम दोऊ। नारी वर्ग जाने सब कोऊ॥
पुनि रघुवीर ही भगतिहि प्यारी। माया खलु नर्तकी विचारी॥
भगतिही सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।
राम भगति अनुपम निरुपाधी। बसहि जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि विलोकि माया सकुचाई। करि न सके कछु निज प्रभुताई।
अस विचारि जे मुनि विज्ञानी, जा–चहि भगति सकल गुन खानी॥

यह भेद रघुनाथ कर बेगि न जाने कोय।
जो जाने रघुपति कृपा सपनेहु मोह न होय॥

और को लागि न अस जाहि। कौन है ऐसा जिसका नहीं लगा।

विरति चर्म असि ज्ञान मद लोभ मोह रिपु मारि।
जयपाई सो हरि भगत देखु खगेश विचारि॥

इन आसुरी प्रवृत्तियों को जिन्होंने हमारे अन्तःकरण में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया है, जिसके कारण जीव सत्यानुभूति नहीं कर पाता को लब्धहस्त होकर दृढ़ संकल्प से इन्हें मार

भगाये एवं सत्य को प्राप्त करे। राम-रावण युद्ध के समय जब विभीषण को शङ्का उत्पन्न हो गयी तो वे विचलित्त होकर कहने लगे। यथा—

रावण रथी विरथि रघुबीरा। देख विभीषण भयो अधीरा॥
नाथ न रथ नहि तन-मद-त्राणा। जितव केहि विधि वीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जप हो सो स्पन्दन आना॥

विभीषण ने शङ्का व्यक्त की कि हे नाथ न आपके पास रथ है, न पद में पनही है, न तन पर कवच है, नहीं अस्त्रों-शस्त्रों का भण्डार ही है, आप उस महारथी रावण को जो सभी साधनों से सम्पन्न अपके सम्मुख रणक्षेत्र में डटा है उसके ऊपर किस प्रकार विजय प्राप्त कर सकते हैं? भगवान् श्रीराम विभीषण की बातों को सुनकर हँस दिये तथा उन्होंने विभीषण को समझाया कि मेरा लक्ष्य रावण को परास्त करना नहीं है, वह तो इसके पहले कई बार बालि एवं सहस्रावाहु द्वारा पराजित हो चुका है। मेरा लक्ष्य तो रावणत्व (दुर्गुणों) के ऊपर विजय प्राप्त करना है, क्योंकि इन दुर्गुणों से युक्त रावण नाना प्रकार का अन्याय एवं अत्याचार कर रहा है। रावणत्व के ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए जैसा रावण का रथ एवं अस्त्र-शस्त्र है उससे रावणत्व के ऊपर विजय पाना असम्भव है। जिस रथ पर सवार होकर जिन अस्त्र-शस्त्र से रावणत्व के ऊपर विजय प्राप्त किया जा सकता है उस पर मैं आरूढ़ होकर आया हूँ और मैंने (भुज उठाय प्रण कीन्ह निसिचर हीन करौ मही)। विभीषण भगवान् राम की बात समझ नहीं सके वे इधर-उधर विस्मय भरी दृष्टि से चारों ओर देखने लगे कि न कहीं रथ न कोई और साधन, हे प्रभो मेरी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा है। कृपया समझाने की कृपा करें। भगवान् श्रीराम ने कहा कि हे विभीषण, इस इन्द्रियों वाले रथ पर

आरूढ़ होकर जीव-आत्मा राम संसार रूपी कर्म क्षेत्र में आया और यहाँ आने पर सत्यरूपी सीता को अहंकार रूपी रावण ने जीव आत्मा राम से हरण कर लिया है। अब पुनः सत्यरूपी सीता को जीव आत्मा रूपी राम कैसे प्राप्त करेगा तथा इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए जैसा रथ-कवच एवं अस्त्र-शस्त्र चाहिए उसका वर्णन करता हूँ ध्यानपूर्वक सुनो।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्यशील दृढ ध्वजा पताका।
बल-विवेक-दम-परहित घोरे। क्षमा-कृपा-समता रजु जोरे॥
ईश भजन सारथी सुजाना। विरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परशु-बुद्धि शक्ति प्रचंडा। वर-विराग कठिन कोदंडा॥
अमल-अचल मन त्रोन समाना। सम जम-नियम-शील मुख नाना।
कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। यही समविजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जितन कहु न कितहु रिपु ताके।

महा अजय संसार रिपु जीत सकहि सोइ वीर।
जाके अस रथ होइ दृढ सुनहु सखा मति धीर॥

इस प्रकार रावणत्व के ऊपर विजय प्राप्त होगी और जीव-आत्मा राम सत्यरूपी सीता को पुनः प्राप्त कर लेगा। यह एक ऐसी कहानी है जो न समझ में आती है और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है। यथा—

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनइ न जात बखानी॥
ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुख राशी॥

अब मोहे फिर-फिर आवत हासी।
सुख समूह सुख को ढूँढ़त जल में मीन पियासी॥
सबही तोहै आतम चेतन अज-अखण्ड अविनाशी।
निश्चय करे ना निज स्वरूप को ध्यावत है
मथुरा अरु काशी।

निर्भय राम कृपा से काटी लख चौरासी ।
अब मोहे फिर - फिर आवत हासी ।

जीव ईश्वर का अंश है और उसका स्वरूप (सच्चिदानन्द है) सत्य है, चैतन्य है एवं आनन्दमय उसका स्वरूप है फिर यह रोग कैसे लगा ? कौन-सा रोग लग गया ?

पुनरपि जननम्, पुनरपि मरणम्, पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
सो माया बस भयउ गोसाईं । बधो कीर-मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतन ही ग्रन्थि परि गई । जदपि मृषा छूटत अति कठिनई ॥
जबसे जीव भयो संसारी । छुटि न ग्रन्थि न होय सुखारी ॥
श्रुति-पुराण बहु कहेउ उपाई । छुटि न अधिक अधिक अरुझाई ॥
जीव हृदय मोह विसेखी । ग्रन्थि छुटि किमि परई न देखी ॥

यहाँ यह बात विशेष जानने योग्य है कि माया का दो स्वरूप है—

१. विद्या माया, २. अविद्या माया ।

जब संसार रूपी कर्म क्षेत्र में आकर शरीर और इन्द्रियाँ अविद्या माया रूपी तृण को चरने लगती हैं यानी अशुभ कर्मों में लीन हो जानेपर जीव-आत्मा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप से वञ्चित होकर नाना दुःखों को प्राप्त होता है । पुनः जब भगवान् की कृपा हो जाय एवं बुद्धि में विवेक जागृत होकर सत् और असत् का ज्ञान हो जाय एवं शरीर और इन्द्रियाँ विद्या माया रूपी तृण को चरने लगे तो पुनः जीव आत्मा अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लेता है । यथा—

अस संयोग ईश जब करही । तबहू कदाचित सो निरु अरई ॥
सात्विक श्रद्धाधेनु सोहाई । जो हरि कृपा हृदय बस आई ॥
बन जप-तप-व्रत-यम-नियम अपारा । जे श्रुत कह शुभ धर्म अचारा ॥
तेहि तृन हरित चरे जब गाई । भाव बच्छ शिशु पाई पे नाही ॥

नोइ-निवृत्ति पात्र विस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥
परम धर्म मय पय दुहि भाई। अवटे अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तब क्षमा जुड़ावे। धृति सम जावनु देई जमावे ॥
मुदिता मथे विचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुवानी ॥
तब मथ काढ़ लेऊ नवनीता। विमल-विराग-सुभग-सुपुनीता ॥

योग अगनि कर प्रगट तब, कर्म शुभाशुभ लाई।
बुद्धि सिरावे ज्ञान घृत, ममता मल जर जाई ॥
तब विज्ञान निरुपिनि बुद्धि विशद घृत पाई।
चित्त दिया भर घरे दृढ़ समता दियट बनाई ॥
तीन अवस्था तीन गुन तेही कपास से काढ़ि।
तुलि-तुरिप सवारि पुनि बाति करे सुगाढ़ि।
येही विधि लेसे दीप तेज राशि-विज्ञानमय ॥
जातहि जासु समीप जरहि मदाधिक सलभ सब।

सोहमअस्मि इति वृत्ति अखंडा।
दीप शिखा सोइ परम प्रचंडा ॥
आतम अनुभव सुख सु प्रकाशा।
तब भव मूल भेद-भ्रम नासा ॥

इस प्रकार जीव पुनः अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त कर सभी प्रकार के पाप-ताप से मुक्त हो जाता है। इसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए यह मनुष्य शरीर भगवान् की असीम अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है, क्योंकि इसी शरीर से जीवन के इस चरम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है, किसी अन्य शरीर से सम्भव नहीं है।

बड़े भाग्य मानुष तन पावा। सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा।
साधन-धाम-मोक्ष कर द्वारा। ये ही पाये न जो बैकुण्ठ सवारा ॥

देवताओं को भी दुर्लभ यह मनुष्य शरीर हमें अनायास प्रभु

की कृपा से प्राप्त हो गया है। कबहुक ईश परम सनेही (विन हेतु देत नरदेही) फिर ऐसी अनमोल वस्तु को पाकर भी—

जे न तरई भवकूप नर समाज अस पाई।
ते कृत निन्दक मन्दमति आत्म हनन गति जाई॥

यह मानव शरीर दुर्लभ एवं अनमोल है जिसको पाने के लिए चराचर विश्व के सभी जोव लालायित रहते हैं।

नर-तन-सम नहि कउनहु देही। जोव चराचर जाचहि जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान-विराग-भक्ति शुभ देनी॥

इस शरीर के द्वारा भक्ति-मुक्ति-ज्ञान-विराग आदि रूपी मणि-माणिक्य की खेती जो करे वही धन्य है तथा उसी का जीवन सार्थक है। इसके विपरीत यदि इसे विषय-भोग में फँसाया तो कौन-सी गति होगी !

नर-तन सम नहि कबनहु देही। पलट सुधरते सठ विष लेही॥

इस मानव शरीर को पाकर गोस्वामी जी प्रभु के कितने कृतज्ञ हैं देखिये।

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
साधन धाम विवुध दुर्लभ तनु दीन्हो॥

और हमारी गति क्या है—

रात गवाँई सोयके दिवस गवाँई खाय।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय॥

यह दुर्लभ मानव शरीर का क्या महत्त्व है और हमें यह प्रभु की अमानत के रूप में उनकी कृपा से क्यों मिला है ? हमें इस शरीर को किस व्यापार में लगाना चाहिए। यथा—

यह काया है कल्प तरु तीनो गुन की तीनो डाली
हर एक फल है इसी में हरि नाम की हरियाली॥

अतः सावधान हो जाय, समय चूक जाने पर फिर पछताने से कोई लाभ नहीं होगा।

मानुष तन दुर्लभ अहै, बहुरि न दुजो बार।
पका फल जो गिर गया, पुनि नहि लागै डार॥

अतः यथाशीघ्र पुनः अपने घर में वापस आ जाय क्योंकि सुबह का भूला यदि शाम को घर वापस आ जाय तो उसे भूला नहीं कहते। इसलिए जिस प्रयोजन के लिए यह शरीर भगवान् ने हमको अमानत के रूप में जिस भजनरूपी व्यापार में लगाने के लिए दिया है उसी व्यापार में लग जाय। हम यदि अपना कल्याण चाहते हैं, यदि हम जीवन के शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप को प्राप्त करना चाहते हैं तथा यदि हमें जीवन को सफल एवं सार्थक बनाना है तो यथाशीघ्र इसके द्वारा यही भजनरूपी व्यापार हो और कोई दूसरा नहीं। तभी सर्वत्र मंगलमय वातावरण की सृष्टि होगी और सर्वत्र सुख-शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। अतः—

नर-तन पाइ जतन कर ऐसा जिसमें वो करतार मिले।
ऐसी उत्तम योनि पदारथ फिर नहि बारम्बार मिले॥
बने हैं पूरब जनम कुछ ऐसे उन्हीं की है ये प्रभुताई।
जिससे तूने इस दुनिया में ऐसी उत्तम नरदेही पाई॥
पाकर ऐसी कंचन काया हरि का भजन करो रे भाई।
जनम-जनम की बिगरि बात फिर इसी जनम में बन जाई॥
जिसने कुछ नहीं किया भजन नहि मुख से गुन गोविन्द गाया॥
वृथा जनम गंवाय जगत में अन्त काल को पछताया।
लख चौरासी फिरे भरमता जमदूतन को मार मिले।
ऐसी उत्तम योनि पदारथ फिर नहि बारम्बार मिले।
नर-तन पाय जतन कर ऐसा जिसमें वो करतार मिले॥

यह निर्विवाद सत्य है कि हमें यह मानव शरीर सिर्फ भजन रूपी व्यापार करने के लिए ही मिला है और एकमात्र यही भजन रूपी व्यापार ही जगत् में सत्य है बाकी सब असत्य है। यही भगवान् शंकर जी का अनुभव था जिसे उन्होंने माता जी को सुनाया। यथा—

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना।
सत हरि भजन जगत सब सपना॥

भजन का विहङ्गम मार्ग

प्राण एवं प्रज्ञा को एक करके मूलाधार से उठती हुई परा वाणी को जो साधक अथक परिश्रम के द्वारा पकड़ कर अपने जीवन में अवतरित्त कर लेता है उसका जन्म-जन्म का कलुष धुल जाता है तथा वह सभी पाप-ताप से मुक्त हो जाता है। मूलाधार से उठती हुई परा वाणी ही पिण्ड में जान्हवी का अवतार है जिसमें गोता लगाने पर जीव मुक्त हो जाता है।

जीते जो मर जाये करे ना तन की आसा।
ज्ञानभूमि के बीच में चलती है उलटी श्वासा॥
तुरिया तेती अतीत शोधी फिर सहज समाधी।
भजन तेलवत् धार साधना निर्मल साधी॥

आँख-कान-मुख बन्द कराओ। अनहद झंगा शब्द सुनाओ॥
दोनो तिल इकतार मिलाओ। तब देखो गुलजारा है॥
गगन मंडल में उर्धमुख कुआं। गुरुमुख साधू भर-भर-पीया॥
निगुरे मरे प्यास बिन पिया। जिनके दिये अधियारा है॥
तु तो मैना कर दीदार महल में प्यारा है।

ज्ञानदीप प्रकाश की भीतर लेहु जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को सहज समाधि लगाय॥

जैसे माया मन रमे वैसे नाम रमाय।
तारा मंडल भेद के तब अमरापुर को जाय॥

अमरापुर का दृश्य—

उलटा कुँआँ गगन में तामे जरे चिराग।
तामे जरे चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छहो ऋतु बारहो मास रहे जलता दिन राती।
सद्गुरु मिला जो होय ताहि के नजर में आवे।
निकले इक आवाज चिराग को ज्योति माही।
ज्ञानी समाधि सुने और कोई सुनता नहीं।

उस अखण्ड प्रकाश पुञ्ज से क्या आवाज निकली है—

सोहं अस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप शिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सू प्रकासा। तब भव मूल भेद भ्रम नासा॥

ॐ शान्ति ! शान्ति ! शान्ति !

अखण्ड आनन्द।

सर्वे भवन्तु सुखिन : सर्वे सन्तु निरामया।

चतुर्थ सोपान

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तगोचरं तमगोचरम् ।
गोविन्दं परमानन्दं सद्‌गुरुं प्रणमाम्यहम् ॥

प्रेमा भक्ति रूपी मण :—

विषय

सब कर मत खग नायक एहा ।
करहू राम पद पंकज नेहा ॥

विश्व में प्रचलित सभी मतों में आपस में समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित कर विषमता में समता एवं अनेकता में एकता का बोध करा राम के चरणों में अनुराग उत्पन्न करना इस विषय का मुख्य लक्ष्य है जिस पर यथासम्भव प्रकाश डालने का प्रयास किया जा रहा है।

विश्व में जितने भी मत-धर्म हैं वह सभी समय-समय पर महापुरुषों द्वारा चलाये गये हैं। जैसे सनातनधर्म, आर्यधर्म, सिखधर्म, शैव-शाक्य एवं वैष्णवधर्म, ईस्लामधर्म एवं ईसाईधर्म। जब पृथ्वी पर अधर्म, अन्याय, अत्याचार का बाहुल्य हो जाता है एवं चारों ओर अशान्ति-असन्तोष व्याप्त हो जाता है तथा मानव जीवन संतप्त, खिन्न एवं परितप्त होकर नाना दुःखों को प्राप्त हो जाता है तथा अपने लक्ष्य से पथभ्रष्ट हो जाता है एवं संसार रूपी कालचक्र में फँस कर अधः-से-अधोगति को प्राप्त हो जाता है ऐसी अवस्था कब उत्पन्न होती है ? गोस्वामी जी के शब्दों में—

जब से जीव भयो संसारी। छुटि न ग्रन्थि न होय सुखारी।
श्रुत पुरान बहु कहेउ उपाई। छुटि न अधिक-अधिक अरुझाई।
जीव हृदय तम मोह विसेखी। ग्रन्थि छुटि किमि परई न देखी।।

ऐसे ही समय पर महापुरुष पृथ्वी पर अवतरित होकर इस दुःख से निवारण एवं त्राण पाने के उद्देश्य से तथा मानव जीवन को सुखी एवं सार्थक बनाने के लिये अपनी वाणी-लेखनी एवं कर्म के द्वारा हमें वह मार्ग दिखला जाते हैं जिन पर चल कर हम संसार में व्याप्त नाना-दुःखों को पार कर जीवन के शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप को प्राप्त कर अपने जीवन को सार्थक एवं सफल बना सकें। यही मार्ग आगे चलकर धर्म एवं मत के नाम से विश्व में प्रचलित हो जाते हैं। इन सभी धर्मों का मतों का एकमात्र उद्देश्य है कि "करहु राम पद पंकज नेहा"। भगवान से विमुख हो जाने तथा संसार के अनित्य पदार्थों में आसक्ति एवं कामना उत्पन्न हो जाने पर मानव विषय-वासना की आग में दग्ध एवं परितप्त होकर जब नाना प्रकार का दुःख भोगने लगता है तो इससे वह तब तक छुटकारा नहीं पा सकता जब तक वह अनित्य संसारी विषय-वासनाओं से मुख मोड़कर नित्य एवं सुख स्वरूप परमात्मा की तरफ उन्मुख न हो जाय। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु ही संसार में धर्मों एवं मतों का प्रादुर्भाव हुआ और उन सभी मतों एवं धर्मों का यही एकमात्र लक्ष्य है कि भगवान के चरणों में अनुराग होने पर ही हम नाना प्रकार के भव रोगों से छुटकारा पाकर नित्य परमात्मा का सामीप्य प्राप्त कर अपने को सार्थक बना सके।

भगवान् एक हैं उन्हें ईश्वर कहें, खुदा कहें, राम कहे या रहीम कहें, कृष्ण कहें या करीम कहें। हरि-नारायण-गोविन्द, ईसा-मूसा-पैगम्बर कोई नाम सब एक ही परमात्मा के नाम

हैं। उसे हम निर्गुण-सगुण-साकार-व्यक्त-अव्यक्त जिस भी रूप में जानें वह सब एक ही परमात्मा का रूप है उनमें किसी प्रकार का द्वैत भाव यानी भिन्नता नहीं है। सत्य ही परमात्मा है "सत्यं शिवम् सुन्दरम्"। सत्य क्या है ? सत्य वस्तु है आत्मा, मिथ्या जगत असार। नित्यानित्य विवेक यह लीजै बात विचार। चेतन मात्र प्रकाश स्वरूप जो आत्मा है वही सत्य है भगवान् है इसका स्वरूप है—

ज्योतियों का ज्योति है सर्व प्रथम है भासता। अव्यय सनातन दिव्य दीपक सर्वलोक प्रकाशता। यही सत्य परम प्रकाशक रूप में सारे विश्व में, हममें, तुममें, खड्ग में, खम्भ में, घट-घट में एक-रस, 'अखण्डमंडलाकारम् व्याप्तं येन् चराचरम्' है। इस परमात्मा की अनुभूति कैसे होगी ? "करहु राम पद पंकज नेहा"। परमात्मा सब जगह समान रूप से नित्य विद्यमान है वह प्रेम से ही प्रगट होता है। यथा—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम से प्रगट होत यह मैं जाना॥

यह निर्विवाद सत्य है कि—

मिलहि न रघुपति बिन अनुरागा।
किये जोग जप नेम विरागा॥

इसलिए यदि हमें अपने राम से मिलना है, उनका सामीप्य एवं सान्निध्य प्राप्त करना है तो हम प्रेम के इस पाठ को पढ़लें क्योंकि—

है प्रेम जगत मैं सार अरु कछु सार नहीं है।

इसी प्रेम के पाठ को जो पढ़ा वही पंडित हुआ बाकी सब मूर्ख ही रह गये। यथा—

पोथी पढ़-पढ़ जग मुआ पंडित हुआ न कोय।

ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

प्रेम से भगवान् रीझते हैं तथा प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न होने पर भक्त के सम्मुख हो जाते हैं—

राम-राम सब कोई कहै ठग-ठाकुर और चोर।
बिना प्रेम रीझत नहीं तुलसी नन्द किशोर॥

वासना से रहित विशुद्ध प्रेम उत्पन्न होने पर राम का साक्षात्कार सम्भव है। विशुद्ध प्रेम के अभाव में हम अपने इस लक्ष्य को किसी अन्य साधन के द्वारा नहीं प्राप्त कर सकते। राम-राम सब कोई कहता है परन्तु उनमें प्रेम से कहने वाले कोई-कोई विरला महापुरुष हैं जो अपने प्रेमपाश में भगवान् को बाँध पाते हैं। यहाँ इसी भाव को गोस्वामीजी उक्त पद के द्वारा व्यक्त करते हैं कि राम-राम सब कोई कहता है तो सब कोई में तो सारा समाज ही आ गया फिर ठग-ठाकुर-चोर की विशेषता क्यों गोस्वामीजी ने लगा दिया। उसका विशेष अभिप्राय यह है कि इन तीनों ठग-ठाकुर-चोर ने जैसा प्रेम भगवान से किया वैसा ही प्रेम करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं। ये तीनों ठग-ठाकुर-चोर कौन थे तथा इन्होंने कैसा प्रेम किया था सो भी सुनें। ठग थे वाल्मिकी जी जिन्होंने राम से ऐसा प्रेम लगाया कि मरा-मरा कहते राम में लीन हो गये तथा स्वयं राममय हो गये। यथा—

उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

ठाकुर कौन थे? दशरथजी, जिन्होंने मनु के रूप में ऐसा भगवान् से प्रेम लगाये कि भगवान् को उनके यहाँ पुत्र रूप में जन्म लेना पड़ा। चोर कौन था? रावण। आप कहेंगे कि रावण तो राम का शत्रु था उसने कब राम से प्रेम किया? इसी प्रसंग में एक रोचक चर्चा यहाँ प्रस्तुत है। एक बार एक महात्मा के पास कुछ लोग बैठ कर आपस में बात कर रहे थे। बात यों हुई कि एक सज्जन बोल पड़े कि—

चोरी चुगली-जामनी और परायी नार।
सुख चाहे जो शरीर को तज दे बातें चार ॥

महात्माजी ने इस पद को बिल्कुल उलट कर कहा कि—

चोरी-चुगली-जामनी और परायी नार।
सुख चाहे जो शरीर को पकड़े बातें चार॥

महात्माजी ने ठीक उन सज्जन के विपरीत बात कह डाली। पहले वाले सज्जन ने उक्त चारो बातों को त्यागने का संकेत किया तथा महात्मा ने उन्हीं चारो बातों को धारण करने की बात कही। पहले वाले सज्जन बोले महाराज, आप जिन चारों बातों को धारण करने को कहते हैं उसे शास्त्र निषेद्ध कर्म बतलाते हैं। आप कैसे इन निषिध कर्म को धारण कर सुख प्राप्त कर सकते हैं। महात्मा हँसने लगे तथा कहा कि भाई तुम लोगों की बातें अपनी जगह पर एकदम ठीक हैं और मेरी बात भी अपनी जगह बिल्कुल ठीक है। वहाँ पर बैठे सभी लोग महात्मा का मुख देखने लगे तथा उनसे अनुरोध किया कि कृपया बतलाने का कष्ट करें कि आपकी बात अपनी जगह कैसे ठीक है? महात्मा जी ने उत्तर दिया कि देखो इस प्रकार ठीक है। १. (चोरी) चोरी करो तो राम नाम की अर्थात् राम का भजन चोरी-चोरी करो कि कोई जानने न पाये। २. (चुगली) व्यवहार में जब भी चुगली करो तो राम नाम की, उनके लीला की। ३. (जामनी) जो भी कार्य प्रारम्भ करने जाओ तो सर्व प्रथम राम नाम की जमानत ले लो अर्थात् राम का नाम सुमिर कर प्रत्येक कार्य को प्रारम्भ करो। ४. (परायी नार) तो परायी नार से तात्पर्य है गंगा-जमुना-सरस्वती-नर्मदा जो पवित्र नदियाँ हैं वे भी किसी पराये की बहू-बेटी एवं नारी हैं उनमें क्या करो 'दरस-परस मज्जन अरु पाना, हरे पाप कहे गये वेद पुराना'। देखा आप लोगों ने कि इन चारों अवगुणों को भी

राम में लगा कर किस प्रकार सुख प्राप्त किया जा सकता है। महात्मा द्वारा दर्शाये गये भाव को तामसी प्रवृत्ति वाला रावण खूब अच्छी तरह जानता था और उसने उन सभी का उपयोग राम को प्राप्त करने में लगा दिया और अन्त में वह राम को अपने पास बुलाने में समर्थ भी हो गया तथा राम का सामीप्य प्राप्त कर वह सभी प्रकार के पाप-ताप से मुक्त हो गया। इस प्रकार से जब राम से प्रेम होगा तो राम रीझेंगे तथा भक्त की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण कर देंगे। अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार का प्रेम राम से किस प्रकार होगा। उसका नुस्खा क्या है सो यह है कि—

तन से कर्म करहु विधि नाना।
मन राखहु जहँ कृपा निधाना॥

मन से सकल वासना भागी।
केवल राम चरन लव लागी॥

मिलहि न रघुपति बिन अनुरागा।
किये जोग-जप-नेम-विरागा॥

आशय यह है कि जब व्यवहार-जगत में इस प्रकार कर्म होगा, किस प्रकार होगा कि देने वाला राम, लेने वाला राम, आने वाला राम, जाने वाला राम, खाने वाला राम, खिलाने वाला राम, कहने वाला राम, सुनने वाला राम, देखने वाला राम, दिखाई देने वाला राम, ऊपर राम, नीचे राम, आगे राम, पीछे राम, बायें राम, दायें राम, पूरब राम, पश्चिम राम, उत्तर राम, दक्षिण राम। जिस गली में गया, जिस मोड़ पर गया, जिस चौराहे पर गया, जिस गाँव में गया, जिस नगर में गया सब जगह राम ही से व्यवहार किया, जब इस प्रकार जगत में व्यवहार होगा तो वह अवस्था आ जायेगी कि 'निज प्रभुमय देखिय जगत केहि सन करहि विरोध।' जब विरोध समाप्त हो गया तो स्वतः

मन से 'सकल वासना भागी। केवल राम चरन लव लागी ।।
अर्थात् राम के चरणों में अनुराग उत्पन्न हो गया। दूसरा रास्ता राम में प्रेम उत्पन्न करने का यह है कि—

बिन सतसंग न हरि कथा, तेहि बिन मोह न भाग।
मोह गये बिन राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ।।

अर्थात् निरन्तर सत्सङ्ग करने, सन्त-महापुरुषों के दिखलाये हुए मार्ग पर चलने एवं उनके आदेश का पालन बराबर करते रहने पर राम के चरणों में अनुराग उत्पन्न हो जायेगा। क्योंकि निरन्तर सत्सङ्ग से सत्य-असत्य का बोध अर्थात् विवेक हो जाता है तथा सत्य एवं नित्य वस्तु भगवान् के चरणों में अनुराग हो जाता है तथा अनित्य, असत्य एवं दुःख रूप संसार छूट जाता है। जब अनुराग हो जायेगा तथा उसका दृढ़-से-दृढ़ वेग उत्पन्न होगा तो 'इसी प्रवल प्रेम के बस में पड़ कर हमने प्रभु को नियम बदलते देखा। नरसिंह रूप में हमने उसे पत्थर से निकलते देखा। श्री प्रहलाद जी के प्रगाढ़ प्रेम के वशीभूत हो भगवान् को नरसिंह रूप धारण कर खम्भे में से प्रकट होना पड़ा। कैसे-कैसे नियम इन प्रेमियों के कारण बदलते देखा गया सो उनमें-से कुछ दृश्य आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं।

विनय प्रेम वस भई भवानी। सखी-भाल मूरत मुस्कानी ।।

मुस्कान ही नहीं रह गयी वरन मुख से बोल भी पड़ी।

सुन सिय सत्य असीस हमारी। पुजहि मनःकामना तुम्हारी ।।

सो कैसे यह मनो कामना पूर्ण हुई ?

जापर-जाकर सत्य सनेहू। सो तेहि मिले न कछु सन्देहू ।।

जगत् जननी जानकी के इस विशुद्ध प्रेम ने श्रीराम को उन्हें भार्या रूप में ग्रहण करने को बाध्य कर दिया। इसी प्रवल प्रेम के वश में पड़कर श्रीराम एक स्थान पर आजीवन कारावास की

सजा भोग रहे हैं यह तो महान आश्चर्य की बात है जिसे भी प्रेमी जन ही कर दिखाते हैं। तो भगवान् श्रीराम कहाँ आजीवन कारावास भुगत रहे हैं।

सुमिरत पवन सुत पावन नामू। अपने वस कर राखेहु रामू॥

श्री हनुमान्‌जी ने अपना वक्षःस्थल फाड़ कर सारे जगत को दिखला दिया कि उन्होंने अपने पवित्र एवं विशुद्ध प्रेम से भगवान् को सदा के लिए अपने हृदय में स्थापित कर लिया है। चूंकि श्री हनुमान्‌जी स-शरीर अमर हो चुके हैं और भगवान् राम, श्री हनुमान्‌जी के हृदय रूपी कारागार में आजीवन बन्द हो गये। अब आपको प्रेम का एक विलक्षण दृश्य भी देखने को मिलेगा, जिसे देखकर आपके भी शरीर में रोमाञ्च हो जायेगा तथा नेत्रों में प्रेमाश्रु प्रगट हो जायेगा। इस दृश्य को भी देखने का सौभाग्य श्री हनुमान्‌जी को ही प्राप्त हुआ था। आप भी उसकी झाँकी देखें—

बैठि देखि कुसाशन-जटा-मुकुट कृश गात।
राम-नाम रघुपति जपत श्रवन-नयन जलजात॥
राम विरह सागर महु भरत मगन मन होत।
विप्र रूप धरि पवन सुत आइ गये जिन पोत॥

इस प्रेमी के प्रेम के सम्मुख भगवान् का कौन सा नियम बदला उसे भी देखिये—

भरत सरिस को राम सनेही। जग जग राम-राम जप जेही॥

इस प्रकार से जब रगड़ होती है तो सफलता प्राप्त होती है। किस तरह की रगड़ हो—

अतिशय रगड़ करे जो कोई। अनल प्रकट चंदन से होई॥

भगवान् शंकर माताजी के ऊपर रुष्ट होकर भीषण प्रतिज्ञा कर डालते हैं कि—

शिव संकल्प कीन्ह मनमाही। ये ही तन सती भेंट अब नाहो॥

जब यह खबर पारवती जी को मिलती है तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है—

जनम-जनम की रगड़ हमारी।
वरहु शम्भु नहि रहहु कुआरी॥

इस रगड़ ने भगवान् को विवश कर दिया उन्हें अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर पुनः सती को स्वीकार करना पड़ा। एक बार गोस्वामीजी मथुरा-वृन्दावन की यात्रा पर थे। एक शाम एक मन्दिर में दर्शन करने गये वहाँ श्रीकृष्ण की बाँसुरी वादन करती प्रतिमा के समक्ष मुग्ध-भाव से निर्निमेष भगवान् श्रीकृष्ण की मनोहारी छटा को देखकर भाव-विभोर हो गये तथा उनके मुख से अनायास ही ये शब्द फूट पड़े।

क्या वरनू छवि आज की भलो विराज्यो नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवे धनुषवाण लो हाथ॥

प्रतिमा में प्रतिक्रिया होती है तथा बाँसुरी वादन करती हुई श्रीकृष्ण की प्रतिमा धनुष-वाण धारण किये श्रीराम के रूप में परिवर्तित हो जाती है। श्री कबीर दासजी की यह वाणी कोई देखता है 'संतो नइया बीच नदिया डूबी जाय'। आप कहेंगे कि नाव में नदी कैसे डूब सकती है यह तो नितान्त सम्भव नहीं है। परन्तु कबीर दासजी उसे भी कर दिखाते हैं। प्रेम रूपी ढाई आखर के नाव में राम रूपी नदी डूब गयी सो किस प्रकार प्रेम रूपी नाव में राम रूपी नदी डूबती है उसका दृश्य यदि आप देखना चाहें तो आइये आपको गंगातट तक आने का कष्ट करना पड़ेगा। श्रीराम वन के लिए अयोध्या से प्रस्थान कर गंगाजी के किनारे पहुँच कर केवट से उसपार जाने के लिए नाव लाने को कहते हैं।

माँगी नाव न केवट आना। कहहि तुम्हार मरम मैं जाना॥

भगवान् श्रीराम केवट को विस्फारित नेत्रों से देखते हैं तथा मन में सोचते हैं कि कहाँ हम केवट से उस पार जाने के लिए नाव ले आने को कहते हैं तो वह क्या कहता है कि तुम्हारा मरम मैं जाना। भाई अजीब पागल आदमी से भेंट हो गयी। सूर्यास्त के पहले उस पार जाना आवश्यक है और यहाँ यह दृश्य उपस्थित है क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आता। भइया केवट नाव ले आवो और हमें पार उतार दो ताकि हम अँधेरा होने से पहले उस पार जाकर कहीं पड़ाव डाल सकें। केवट टस-से-मस नहीं हुआ और बोला—

पात भरी सहरी सकल सुत वारे वारे
केवट की जाति कछु वेद ना पढ़ाइहो जू।
मेरो याही लागि राजा जू हौं दीन-
वित्त हीन दूसरी ना गढ़ाईयो जू॥
गौतम की घरनी जो तरनी तरेगी
मेरी तो घरनी घर क्यों मुख दिलाइहो जू।
वरु तीर मारहि लखन मों पै पर
बिन पग धोये नाथ नाव ना चढ़ाइहो जू॥

केवट की इस अटपटी बात को सुनकर श्रीराम को हँसी आ जाती है। कैसे हँसी आ जाती है "सुन केवट के वचन प्रेम लपेटे अटपटे, विहँसे करुणा अयन। चितइ जानकी लखनतन" और फिर श्री राम केवट के विशुद्ध प्रेम जाल में फँस जाते हैं और केवट को सहर्ष पाँव पखारने का आदेश देते हैं।

केवट राम रजायसु पावा।
पानी कठौता भरि लेइ आवा॥ तो फिर—

अति आनन्द उमगि अनुरागा।
चरण सरोज पखारन लागा॥

यही केवट के प्रेम रूपी नाव में श्रीराम रूपी नदी डूब जाती है और केवट के जनम-जनम की चिर अभिलाषा पूर्ण हो जाती है।

बहुत काल प्रभु कीन्ह मजूरी।
आज विधि दीन्ह भर पूरी॥

मतंग ऋषि के आश्रम पर सेवरी रहकर साधु-महात्मा की सेवा करती थी तथा उनका जूठन प्रसाद पाकर भगवान् की भक्ति में दिन-रात लगी रहती। मतंग ऋषि सेवरी की भक्ति से बड़े ही प्रसन्न रहा करते थे। अंत समय में जब मतंग ऋषि अपना शरीर त्याग करने लगे तो उन्होंने सेवरी को अपने पास बुलाकर बड़े ही प्रेम से कहा—"बेटी मैं तुम्हारी भक्ति से बड़ा ही प्रसन्न हूँ और तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुमको भगवान् श्रीराम के दर्शन अवश्य होंगे तथा भगवान् श्रीराम तुमको इसी आश्रम पर आकर दर्शन देंगे और तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर की चिर अभिलाषा पूर्ण कर देंगे। तुम यहीं इसी आश्रम पर रहना भगवान् श्रीराम अवश्य ही पधारेंगे। इतना कह कर मतंग ऋषि ने शरीर त्याग दिया। सेवरी ने मतंग ऋषि के मुख से यह सुन लिया कि भगवान् यहाँ अवश्य आयेंगे तब से भगवान् से मिलने की उनका दर्शन प्राप्त करने की उसकी उत्कण्ठा आशा तीव्र से तीव्र बढ़ती गई तथा दिन-रात प्रभु श्रीराम के चिन्तन में लगी रहती थी। न उसे खाने की सुध रहती न पीने की सिर्फ एक ही बात उसके मन में सदा मंथन करती रहती कि कब प्रभु आयें और उनका दर्शन कर अपना जीवन सार्थक कर सकूँ। वह विक्षिप्त अवस्था में इधर-उधर घूमती निहारती थी तथा पशु-पक्षी, नर-नारी-वृक्षों लताओं-वनस्पतियों से यही पूछती रहती थी कि किसी ने मेरे राम को देखा है? वे कब यहाँ पर आ रहे हैं? कोई मुझे उनका संदेश दो क्योंकि प्रभु ने—

"आवन-आवन कहि गये अजहु नहि आये" तुम लोग बताओ कि हमारे प्रभू कब आयेंगे और कहते-कहते बेहोश होकर गिर पड़ती थी। पुनः होश आने पर फिर वही शब्द उसके मुख से उच्चारित होता था कि "कोई कहियो रे प्रभु आवन की, प्रभू आवनकी मन भावन की। आवन-आवन कहि गये अजहू न आयो, आइ गई ऋतु सावन की। कोई कहियो रे प्रभु आवन की मन भावन की"। परीक्षा घड़ियाँ ज्यों-ज्यों निकट आती जातीं त्यों-त्यों उसकी व्यग्रता बढ़ती गई एवं जब मिलने की व्याकुलता अपनी सीमा को लाँघ गई उसी क्षण भगवान् श्रीराम श्रीलक्ष्मण सहित उपस्थित होकर सेवरी को चिर-अभिलाषा पूर्ण कर देते हैं। भगवान् इसी प्रेम भाव के भूखे हैं, जहाँ इस प्रकार प्रेम भाव भगवान् के प्रति भक्त के मन में जिस क्षण हो जाता है उसी क्षण भगवान्-भक्त के सामने प्रगट हो जाते हैं। यथा :—

साहब के दरबार में केवल भक्ति पियार साहब भक्ति में राजी।
तजा सकल पकवान लिया दासी सुत भाजी साहब भक्ति में राजी॥

नेम-अचार-तीरथ-वरत करे बहुतेरा कोई।
खाये सेवरी के बैर मुये ऋषि मुनी सब रोई॥

किया युधिष्ठिर यज्ञ बटोरा सकल समाजा।
मरदा सबका मान सुय च बिन घंट न बाजा॥

पलटू ऊंची जाति का न कोउ करे अभिमान।
साहब के दरबार में केवल भक्ति पियार॥

साहब भक्ति में राजी तजा सकल पकवान लिया दासी सुत भाजी।

जिस भगवान् श्रीकृष्ण का भेद—

ब्रह्मा-विष्णु महेश्वर हारे पार न कोई पाया है।
शारद शेष सुरेश दिनेश गनेसहु जासु बहु विधि गुन गाया है॥

उसी पर ब्रह्म श्रीकृष्ण को—

नेति-नेति महिमा बरनत वेदहु मन सुत जाया है।
ताहि अहीर की छोकरिया छछिया भर छाछ पर नाच नचाया है॥

गोपियाँ इसी प्रेम-रस का मतवारा प्याला पीकर मतवाली हो गयी थीं। श्रीकृष्ण के वियोग में दिन-रात तड़पती एवं छटपटाती रहती थीं। उन्हीं प्रेम-रस से सराबोर गोपियों को समझाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण उद्धवजी को उनके पास भेजते हैं। उद्धवजी के वहाँ जाकर जब उन गोपियों की दशा का अवलोकन किया तो उनसे कुछ कहने का साहस ही नहीं कर पा रहे थे। उन्होंने क्या देखा कि गोपियां श्रीकृष्ण की रासलीला में इस प्रकार रम गयी हैं कि उन्हें अपने तन-वदन की सुधि भी नहीं है। उन्हें इसका ज्ञान ही नहीं रह गया है कि कौन आता है कौन जाता है, कौन क्या कर रहा है। वे तो भगवान् की लीला में इस प्रकार तन्मय हो गयी थीं कि उन्हें हर ओर भगवान् श्रीकृष्ण ही दिखाई पड़ रहे हैं। चित्त की वृत्तियाँ तदाकार एवं ब्रह्माकार हो गयी हैं। उन्हें बाह्य जगत का ज्ञान नहीं रह गया है तथा वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होकर श्रीकृष्ण के संयोग सुख का भोग कर रही थीं। कुछ देर उसी अवस्था में प्रतीक्षा करने के बाद जब एक गोपी को अकेले देख उद्धवजी उसके पास गये तो उन्होंने उससे कहा कि मैं भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर आया हूँ। इतना सुनते ही उस गोपबाला ने अपने सखियों को उद्धवजी के पास बुला लिया। उद्धवजी एवं गोप बालाओं के बीच जो सन्देश का आदान-प्रदान हुआ उसका यहाँ वर्णन करना आवश्यक है। उद्धवजी कहते हैं—

जो गुन उनके होत तो वेद क्यों नेति बखाने।
निरगुन-सरगुन एक आतम रचि सुख माने॥
वेद पुरान थके सभी पायो नाहिन एक।

निरगुन-गुन विहिन से केहो अकाश ही टेक॥

उद्धवजी निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे तथा उन्होंने निर्गुण ब्रह्म का भाव दर्शाते हुए कहा कि ब्रह्म निर्गुण है उसका कोई नाम रूप नहीं है। इसका थाह वेद भी नहीं पा सके। निरगुन-सरगुन का खेल ठीक वैसा ही है जैसा बच्चे खेल में घर, द्वार, हाथी, घोड़ा बनाकर उसमें सुख मानते हैं जबकि उनमें सच्चाई कुछ भी नहीं है तथा खेल के बाद सभी बिगाड़ कर घर वापस आ जाते हैं। उस निर्गुण ब्रह्म का बोध तो शून्य में समाधि लगाने पर होता है। तुम लोग यह पागलपन छोड़ो तथा ब्रह्म के इस स्वरूप को जानो।

गोपियों ने उत्तर दिया—

जो गुन उनके नहीं तो और गुन आये कहा से।
बीज बिनु तरु जमे मोहि कहो तुम कहा से॥
वा गुन की परिछाइं री माया दरपन बीच।
गुन से गुन न्यारे भये अमल वारि मिलकीच॥
सखा सुन श्याम के।

जब भगवान् निर्गुण है तो वह सृष्टि गुणमय कैसे उत्पन्न हुई। जब सगुण बीज था तभी न सगुण सृष्टि रूपी वृक्ष हुआ क्योंकि समस्त सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले भगवान् ही हैं। हमें उनका सगुण रूप क्यों नहीं दिखाई देता कि हमारे अन्दर प्रेम भाव की कमी है,. अभाव प्रेमाभक्ति रूपी विशुद्ध माया के दर्पण में ही भगवान् का प्रतिबिम्ब छिपा है। उसके अभाव में हमें उसका सगुण रूप नहीं दिखाई देता है और हम उस सगुण स्वरूप से उसी प्रकार विलग हो गये हैं जैसे पानी का बूंद निर्मल जल से पृथक् होकर कीच में मिल गया हो।

आगे गोपियाँ कहती हैं—

कोऊ कहे रे मधुप श्याम योगी तुम चेला।
कुब्जा तिरथ जाप कियो इन्द्रिन को मेला॥

मधुवन सुध विसराय के आये गोकुल माही।
इहाँ सभे प्रेमी बसे तुम्हरो ग्राहक ताही॥
पधारो रावरे।

नास्तिक है जो लोग कहाँ जाने हित रूपे।
प्रगट भानु को छाड़ि गहे परछाईं धूपे॥
हमको बिन वा रूप के कछु न और सोहाय।
जो करतल आभास के कोटिक ब्रह्म दिखाय॥
सखा सुन श्याम के।

उद्धवजी उत्तर देते हैं कि—

जो गुन आवे दृष्टि मध्य नहीं ईश्वर सारे।
इन सबही से वासुदेव अच्युत है न्यारे॥
इन्द्रि दृष्टि विकार से रहत लुप्त वह ज्योती।
शुद्ध रूप जाने बिना तृप्ति न कबहु होती॥
सुनो ब्रज नागरी

अर्थात्—इन चक्षुओं से जो भी तुम देख रही हो वह सब ईश्वर नहीं है, वह सब माया है। गो-गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब जानहु माया है भाई। नेत्रों का विकार जब तक दूर नहीं होगा, जब तक दिव्य दृष्टि नहीं प्राप्त होगी तब तक परमात्मा का शुद्ध रूप का दर्शन नहीं होगा।

गोपियों ने उत्तर दिया—

कोऊ कहे रे मधुप तू कहाँ रस को जाने।
बहुत कुसुम पर बैठि सभे आपन सम जाने॥
आपन सन हमको कि ये चाहत है मतिमंद।
दुविधा ज्ञान उपजाई के करत रंग में भंग॥
सखा सुन श्याम के

इतना कहने के पश्चात् गोपियों की श्रीकृष्ण के वियोग की व्यथा अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तथा उनके आँखों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है तथा वहाँ का सारा वातावरण दिव्य आलोक से प्रकाशित हो जाता है तथा उद्धव जिधर देखते हैं उधर श्रीकृष्ण ही दिखलायी पड़ते हैं। सारा वातावरण कृष्णमय हो गया। उद्धव उन गोपबालाओं के विशुद्ध प्रेम के सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं तथा उनके मुख से निकल पड़ा।

चली प्रेम की धार भक्ति तेज प्रकाशो।
सबे ज्ञान-विज्ञान उधव की पल में नाशो ॥
कहत मोह विस्मय भये प्रभी ये सब पात्र।
कृत-कृत मैं हो गये इनके दरशन मात्र ॥
मिट्यो मल ज्ञान के

जो ऐसे मरजाद मेटि मोहन को धावे।
काहे न परमानन्द प्रेम पदवी वे पावे ॥
ध्यान-भोग षट कर्म से प्रेम भक्ती है साँच।
मैं यह उपमा देत हौ हीरा आगे काँच ॥
सुनो मन बावरे !

इसी प्रेम रस का प्याला पीकर मीरा वावरी हो गयी तथा सारे लौकिक वन्धनों को तोड़ मगन मन नाच उठी।

पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे।
लोग कहे मीरा भयी वावरी, सासु कहे कुल नाशी रे।
राना भेज्यो जहर पियाला पीवत मीरा हाँसी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर सहज मिला अविनाशी रे।
पग घुंघरू बाँध मीरा नाची रे।

इसी प्रेमी के हाथ गिरधर गोपाल बिक गये और मीरा मगन मन गा उठी।

माई री मैं तो गोविन्द लियो मोल—गोविन्द लियो मोल।
कोई कहे महगों कोई कहे सहतो मैं तो लियो री तराजू तोल ॥
कोई कहे कारो कोई कहे गोरो मैं तो लियो री अखियाँ खोल।
कोई कहे छिनके कोई कहे छुपके मैं तो लियो री बजंता ढोल ॥
मीरा के प्रभु गिरधर नागर पायो री रतन अनमोल।
माई री मैं तो गोविन्द लियो मोल ॥

यह सब प्रेम का ही चमत्कार है। यदि आप भी भगवान् का दर्शन करना चाहे तो आप भी सांसारिक विषय-वासनाओं से रहित होकर भगवान् के चरणों में विशुद्ध प्रेम उत्पन्न करें तथा भगवान् का दर्शन प्राप्त कर अपने जीवन को सफल बनावें। यथा—

भँवरा और पपीहरा प्रीत किये पछतायँ।
सच्चा प्रेम चकोर का चुन चिनगारी खायँ ॥

सच्चा एवं विशुद्ध प्रेम क्या होता है उसकी भी एक झलक यहाँ प्रस्तुत है।

वर्षा ऋतु थी। आकाश काले-काले मेघों से आच्छादित था। रिम-झिम पानी बरस रहा था। ऐसे ही समय में एक एकान्त कमरे में एक सखी जिसका प्रीतम परदेश चला गया था उसके वियोग में व्यथित हो जाती है और जब उसका वियोग तीव्र से तीव्र अवस्था को प्राप्त होता है तो उसकी चित्त की वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती है तथा उसका अपने प्रीतम से मानस सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तथा वह अपने प्रीतम का संयोग सुख पाकर भाव विभोर हो जाती है। उसी समय बगल की अमराइयों से पपीहा पी०पी० की रट प्रारम्भ कर देता है तथा उसके शोर से उस सखी का ध्यान भङ्ग हो जाता है एवं उसका अपने प्रीतम से वियोग हो जाता है। वह व्याकुल एवं अधीर हो उठती है तथा

अपनी दूसरी सखी को बुला कर एक पत्र पपीहे के नाम लिख उसे वहाँ तक पहुँचाने का आग्रह करती है। पत्र में क्या लिखा था—

कुछ सीख चकोर से जो चुनता चिनगारी किसी को सुनाता नहीं।
पुनि सीख ले मंत्र नया यह पी-पी घनो को सुहाता नहीं॥
नभ देख पयोधर श्याम घिरा मिट क्यों उसमें मिल जाता नहीं।
अपने प्रीयतम उस पाहुन को पुतली की निशा में सुलाता नहीं॥
संयोग वियोग की घाटियों में नव नेह में बाँध झुलाता नहीं।
पुनि सीख ले मौन का मंत्र नया यह पी-पी घनो को सुहाता नहीं॥
कुछ सीख चकोर से जो चुनता चिनगारी किसी को सुनाता नहीं॥

सच्चे प्रेमी अपने प्रीतम से इसी प्रकार गुप्त रूप से अपना सम्बन्ध स्थापित कर अपने विशुद्ध प्रेम पाश म अपने प्रीतम को सदा के लिए बाँध लेते हैं। यथा—

हम-तुम चोरी से बँधे इक डोरी से जइयो कहा से हजूर।

फिर प्रेमी प्रीतम से मिल कर एक हो जाते हैं तथा संयोग सुख का परमानन्द सुख का भोग करते लगते हैं। ऐसे ही मस्ताने की एक वाणी यहाँ प्रस्तुत है।

सूरत उस माहरू की हरदम आँख में अपने बसती है।
लाख इबादत से ज्यादा दुनियाँ मैं हुस्न परस्ती है॥
क्या होता है वजू किये क्या होता है मसजिद में जाने से।
क्या होता है नमाज पढ़ कर सर को वहाँ झुकाने से॥
किया न इश्क आके जहाँ में उठा न हाथ जमाने से।
जीते जी जो वो न मिला तो मिलेगा क्या मर जाने से॥
अजब मजा पाया है हमने आँख में आँख मिलाने से।
जिसमें देखा उसी को देखा लगा है तीर निशाने से॥
इसी खब्त से आठो पहर रहती हमारे दिल में मस्ती है।
लाख इबादत से ज्यादा दुनिया में हुस्न परस्ती है॥

गया अगर काबे तो क्या खुदा वहाँ मिल जायेगा।
होकर हेरा वापस अपने घर को आयेगा॥
पास का धन गवाँ कर अगर कोई बुत खाना बनवायेगा।
तो पास की दौलत गवाँ कर पत्थर वहाँ पर पायेगा॥
जब तलक उन माहरू बूतों से आँखें नहीं मिलायेगा।
फिर इस दुनिया में आकर क्या देखेगा क्या दिखलायेगा॥
सुनी है मैंने जहाँ में तलक ये हस्ती है।
लाख इबादत से ज्यादा दुनियाँ में हुस्न परस्ती है॥

रँगाये कपड़े यदि मन ना रंगा तो फिर वह रंग है क्या।
तन से हुआ नंग मन से ना हुआ नंग तो फिर वह नंग है क्या॥
छोड़ कर उन माहरू बूतों का संग,
किया तो फिर वह संग है क्या।
आकर जो चली गई तरंग तो फिर वह तरंग है क्या॥
तन धोया मन न धोया तो फिर वह गंग है क्या।
बढ़ा नहीं नशा इश्क का पी ली भंग तो फिर वह भंग है क्या॥
चश्म मेरी रो-रोकर हरदम यही कहती बरसती है।
लाख इबादत से ज्यादा दुनियाँ में हुस्न परस्ती है॥

कुरान की आयतें पढ़ो और दिल में इश्क का जिकर न हो।
तो फिर तुमको खुदा क्यों कर मिले लाख सिर तुम धुना करो॥
पेट के खातिर पंडित के घर जाकर वेद पुरान पढ़ो।
ढाई अक्षर प्रेम के नहीं पढ़े तो मौत से क्यों कर बचो॥
आग बार कर तपो चाहे उलटा होकर लटको।
बिना इश्क दीदार न मिलता काहे को मुफ्त मरो॥
कहे सन्त जन आशिकी अपनी इसी पर बसती है।
लाख इबादत से ज्यादा दुनियाँ में हुस्न परस्ती है।
सूरत उस माहरू की हरदम आँख में अपने बसती है॥

ऐसे प्रेमी साधकों के लक्षण का वर्णन करते हुए श्री सुन्दर दास जी कहते हैं —

प्रेम लग्यो परमेश्वर सो तब भूलि गयो सगरों घर वारा।
ज्यो उन्मत्त फिरही जितही—तितनेक रही न शरीर समारा॥
श्वाँस उसाँस उठे सब रोम चल दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करे नवधा विधि छाकि परचो रस पी मतवारा॥

न लाज़ तीन लोक की न वेद की कही करे।
न शंक भूत प्रेत की न यक्ष देव से डरे॥
सुने न कान और की द्रशे न और इच्छिता।
कहे न मूक बात और भक्ति प्रेम लक्षणा॥
कबहुक हँसि उठि नृत्य करे फिर रोवन लागे।
कबहुक अति उमंग मन उच्चे स्वर से गावे॥
कबहुक मुख मौन होय गगन सदृश्य रह जावे॥
चित्त-वित्त लग्यो हरी सो सावधान क्यों कर रहे।
प्रम लक्षणा भक्ति यह सुनहु शिष्य सुन्दर कहे॥

ऐसे प्रेमी साधक जिनका भगवान् के चरणों में अनन्य अनुराग हो जाता है वे अन्तर्जगत् में प्रवेश कर भगवान् की मधुर लीला का रसास्वादन करते हैं। उन्हें वाह्य जगत् का मिथ्याभिमान समाप्त हो जाता है। न उन्हें खाने की सुध है न पोने की न और किसी प्रकार के बाह्य आडम्बर को, उनकी चित्त को वृत्तियाँ तदाकार एवं ब्रह्माकार हो जाती हैं। आँखों से अवरिल प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते हैं तथा बार-बार शरीर में रोमाञ्च उत्पन्न होने लगता है। ऐसे साधक सारे लौकिक बन्धनों को जो भगवान् से मिलने में बाधक होती हैं उन्हें तोड़कर अपने इष्टदेव—प्रीतम प्यारे राम का सामीप्य एवं सान्निध्य प्राप्त कर ब्रह्म सुख का भोग करने लगते हैं। ऐसे साधकों के साथ भगवान् उनके दृढ़ एवं विशुद्ध

प्रेम की परीक्षा करने के उद्देश्य से उनके साथ संयोग-वियोग का खेल खेलते हैं। 'कभी उनके सामने प्रगट हो जाते हैं, कभी गुप्त हो जाते हैं। यह क्रिया जब-जब जैसी होती है उसी प्रकार साधक के हाव-भाव में भी परिवर्तन होता है। अर्थात् जब भगवान भक्त के सम्मुख होते हैं तो वह हँसने-नाचने तथा गाने लगता है और जब भगवान् उसकी ओट में चले जाते हैं तो वह रोने-चिल्लाने लगता है तथा असीम वेदना का अनुभव करने लगता है। इस प्रकार निरन्तर जब संयोग-वियोग का खेल प्रारम्भ हो जाता है और जब साधक का प्रेम परिपक्व अवस्था में पहुँच जाता है तो साधक भगवान् को अपने दृढ़ प्रेम-पाश में आवद्ध कर लेता है और तब स्वामी-सेवक एक हो जाते हैं तथा साधक परम कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार प्रेमी साधक अपनी प्रेम-साधना से भगवान् को अपने वश में कर लेता है तथा सारे भव-बन्धनों को काट कर अमरत्व को प्राप्त कर लेता है। यही एक मात्र अभिप्राय सभी मतों एवं धर्मों का है कि—

सब कर मत खग नायक एहा। करहू राम पद पंकज नेहा ॥

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!

श्रीसद्गुरुश्शरणम्

पंचम सोपान

बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम् ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्त गोचरं तम गोचरम् ॥
गोविन्दं परमानन्दं श्रीसद्गुरुं प्रणतोस्म्यहम् ।

तत्वज्ञानरूपी मणि—

विषय

औरहुँ एक गुपुत मत सबहि कहौ कर जोरि ।
शंकर भजन बिन नर पावहि नहि भगती मोरि ॥

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बड़े विनीत भाव से करबद्ध होकर सारे जन मानस से कहते हैं कि शंकर के भजन के बिना मेरी भगती किसी को प्राप्त नहीं हो सकती है। इस पद में श्री भगवान् ने जो गुप्त शब्द कहा उसका अभिप्राय क्या है तथा इस पद में गुप्त बात क्या है यह जानना परम आवश्यक है। इस पद में शंकर शब्द का अर्थ ही गुप्त है। शंकर शब्द का अर्थ क्या है अर्थात् शंकर किसे कहते हैं। 'कल्याणं करोति शंकरः' अर्थात् जीवों का जो कल्याण करे वही शंकर है। जीवों का कल्याण कब होगा क्या लौकिक विभूतियों से सम्पन्न होने पर होगा, कदापि नहीं। जीव का कल्याण तो तभी सम्भव है जब जीव को जो भव-रोग लगा है तथा जीव जो महामोह-तमपुञ्ज में व्याप्त होकर अज्ञान रूपी अन्धकार में पथभ्रष्ट होकर नाना दुखों को प्राप्त हो रहा है उसका जब यह रोग-दुःख दूर होगा तभी जीव का कल्याण

होगा तथा जीव अपने शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप को प्राप्त कर सभी तरह के पाप-ताप से मुक्त होगा। जीव को जो भव रोग लगा है वह कब और कैसे दूर होगा। यथा—

बिन गुरु भव-निधि तरे की कोई।
यदपि विरंचि शंकर सम होई॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी यदि भव-सागर पार जाना चाहें तो उनको भी श्री गुरुदेव के शरण में जाना होगा तभी भव-सागर पार कर सकते हैं। फिर साधारण लोगों की क्या गिनती है? गुरु ही पृथ्वी पर एकमात्र ऐसा अधिकारी व्यक्ति है जो जीव को भव-रोग से दूर कर सभी प्रकार के पाप-ताप से मुक्त कर जीव का कल्याण करता है। गोस्वामीजी भी यही बात कहते हैं कि गुरु ही शंकर का रूप है।

यथा—'बन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम्'। अर्थात् गुरु ही शकर है, नित्य है, सत्य है तथा बोधगम्य है तथा गुरु के वचन में विश्वास-श्रद्धा रखने तथा उनकी आज्ञा रूपी औषधि का सेवन करने से जीव को सभी प्रकार का भव-रोग दूर हो जाता है। इसी गूढ़ तत्त्व की ओर भगवान् श्रीराम विभिन्न अवसरों पर भी संकेत करते हैं। धनुषयज्ञ के समय जब विभिन्न देश के नृप धनुष तोड़ने के लिए क्रमशः आते हैं तथा अपने इष्टदेव का सुमिरन कर धनुष को ताड़ने-उठाने का प्रयास करते हैं पर किसी को सफलता नहीं मिलती है। यथा—

चले इष्ट देवन सिर नाई। तिल भर भूमि सके न छुड़ाई॥

जब विश्वामित्र जी राम को आदेश देते हैं कि—

उठउ राम भंजहु भव चापू। मेटहु तात जनक परितापू॥

तब भगवान् श्रीराम ने किस नाम का स्मरण एवं ध्यान किया। यथा—

मन ही मन प्रनाम गुरु कीन्हा। उठाय अति लाघव धनु लीन्हा॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। लखा न काहु रहे सब ठाढ़े॥

पलक झँपते ही गुरु-नाम के प्रताप से सारा कार्य सम्पन्न हो गया तथा जानकी जी ने श्रीराम को विजय-माला से सुशोभित कर दिया। राम-रावण युद्ध के समय जब विभीषण को शंका उत्पन्न हो जाती है कि रावण के ऊपर विजय प्राप्त करना श्रीराम के लिए सम्भव नहीं तो श्रीराम रावण के ऊपर विजय प्राप्ति की जो युक्ति बतलाते हुए दस इन्द्रियों वाले विश्वविजयी रथ का वर्णन करते हैं तो उस समय भी श्रीराम यही बात कहते हैं कि—

कवच अभेद विप्र गुरु पूजा। यहि सम विजय उपाय न दूजा॥

लंका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जब श्रीराम जी अयोध्या वापस आते हैं तो जब माता कौशल्या के पास जाते हैं तो माता जी ने श्रीराम जी से पूछा कि हे राम! मुझे सहज ही विश्वास नहीं होता कि तू इतना सुकुमार बालक किस प्रकार उस महारथी पराक्रमी रावण के ऊपर विजय प्राप्त किया। उस समय भी श्रीराम जी यही कहते हैं कि—

गुरु वशिष्ठ कुल पुज्य हमारे। तिनकी कृपा दनुज रण मारे॥

एक अवसर पर इस भेद को और स्पष्ट करते हुए भगवान् श्रीराम कहते हैं कि—

मोसे अधिक गुरु ही जो जिय जानी।
तिनके हृदय करो रजधानी॥

एक बार श्री सुदामा जी अपनी पत्नी के विशेष आग्रह पर श्रीकृष्ण से मिलने उनके राजप्रसाद में गये तो द्वारपाल के द्वारा यह सूचना प्राप्त होते ही कि सुदामा नाम का कोई दीन-हीन ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है और आप से मिलना चाहता है तो

भगवान् श्रीकृष्ण जिस अवस्था में थे उसी में श्री सुदामा जी का नाम सुनते ही आतुर भाव से अपने सखा से मिलने को दौड़ पड़ते हैं तथा द्वार पर पहुँच कर उन्हें अपने गले से लगा लिया तथा नाना प्रकार से उनका आतिथ्य सत्कार किया। वहाँ पर उपस्थित दरबारियों ने जब यह दृश्य देखा तो उन्हें महान आश्चर्य हुआ कि त्रैलोक्यपति श्रीकृष्ण जी का एक दीन-हीन ब्राह्मण से इतना लगाव क्यों है! दरबारियों द्वारा जिज्ञासा प्रगट करने पर भगवान् श्रीकृष्ण जी ने जो उत्तर दिया उसे भो देखें—

परम हंस से जीव हंस पुहुप पर आवे।
कालफन्द आधीन होय नाना दुख पावे॥

लख चौरासो भ्रमत युग-युग बीते हैं।
जरा-मरण का अघभार सदा शीश पर लिये हैं॥

भवनिधि लहर प्रवाह से पक्षहीन पक्षी भये।
एक पक्ष गुरु चरन गहि परमहंस से मिल गये॥

तिनही गुरु के ये शिष्य, शिष्य नमह प्यारे।
हम सबके गुरु बन्धु जेष्ठ प्रतिपालन हारे॥

गुरु पत्नीहु इनही के परम पुत्र माने।
इनके शील स्वभाव प्रेम हमहु से अधिक जाने॥

इनकी कीरत कृपा सो हम गुरु समीप भये विस्तार भौ।
इनसे उरिन होतिय न हम दस अवतार लौ॥

यह निर्विवाद सत्य है कि—

राम कृपा नासहि सब रोगा।
जब यही भाँति बने संयोगा॥

सद्गुरु वैद्य वचन विस्वासा।
संयम यह न विषय कर आसा॥

रघुपति भगति सजिवन मूरी।
अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
यही भाँति भले ही कुरोग नसाही।
और कोटि जतन नहि जाही॥

जब सद्गुरु रूपी वैद्य मिल जायेंगे तथा उनकी आज्ञा रूपी औषधि को जीव रूपो रोगी नित्य प्रति सेवन करेगा तब उसका अज्ञान रूपी रोग दूर होगा और उसे ज्ञान रूपी आरोग्यता प्राप्त होगी और किहि जतन नहीं जाही। मानस रचना के प्रारम्भ में ही श्री गोस्वामीजी ने गुरु नाम की महिमा का वर्णन इन शब्दों में किया है उसका भी अवलोकन करें। यथा—

बन्दौं गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरी।
महामोह तम पुंज, जासु बचन रविकर निकर॥

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अन्धकार स्वतः मिट जाता है ठीक उसी प्रकार श्री गुरु के वचन में विश्वास रखने तथा उनकी आज्ञा रूपी औषधि का सेवन करने से सभी तरह का भव रोग दूर हो जाता है। कैसे दूर हो जाता है इसको बतलाते हुए श्री गोस्वामी जो आगे कहते हैं कि—

बन्दौं गुरु पद पदुम परागा।
सुरुच - सुवास - सरस अनुरागा॥
अमिय मूरिमय चूरन चारू।
समन सकल भव रुज परिवारू॥
सुकृत शंभु तन विमल विभूती।
मंजुल मंगल मोद प्रसूती॥
जन-मन मंजु मुकुर मलहरनी।

किये तिलक गुन-गन बस करनी॥

श्री गुरुपद-नख मनिगन जोती।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
दलन मोहतम सो सप्रकासू।
बड़े भाग्य उर आवहि जासू॥

उघरहि विमल विलोचन ही के।
मिटहि दोष-दुख भव रजनी के॥

सूझहि राम चरित मनि-मानिक।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

यथा—सुअंजन अंजि दृग साधक-सिद्ध-सुजान।
कौतुक देखत शैल वन भूतल भूरि निधान॥

श्री गुरु पद-रज मृदु मंजुल अंजन।
नयन अमिय दृग दोष विभंजन॥
तेहिके विमल-विवेक विलोचन।
वरनो रामकथा भव मोचन॥

इस प्रकार श्री गुरु की कृपा से ही श्री गोस्वामी जी रामचरित मानस की रचना करने में समर्थ हो सके। श्री कबीरदास जी भी श्री गुरुदेव की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं यथा—

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागू पायँ।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो लखाय॥

धरती सब कागद करूँ लेखनि सब बन राय।
सात समुन्दर की मसी गुरु गुन लिखा न जाय॥

गुरु बड़े गोविन्द से मन में देखु विचार।
हरि सुमिरे सोवार है, गुरु सुमिरे सो पार॥

यह तन है विष की वेलरी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये जो गुरु मिले, सो भी सस्ता जान॥

जाके गुरु हैं आन्धरा, चेला निपट निरंध।
अन्धे-अन्धा ठेलिया दोऊ कूप परंत ॥

सम दृष्टि सद्‌गुरु किये, मिटा भरम विकार।
जहँ देखा तहँ एक ही देखा, साहब का दिदार ॥
कबीर योगी जगत गुरु, तज दे जगत की आस।
जो जग की आशा करे, तो जगत गुरु वह दास ॥

श्री सद्‌गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए श्री सुन्दरदास जी क्या कहते हैं, उसे भी देखें।

सुन्दर सद्‌गुरु बन्दिये, सोई बन्दन योग।
औषधि शब्द दिवाख करि, दूर करे सब रोग ॥

सुन्दर सद्‌गुरु पलक मैं, दूर करे अज्ञान।
मन-वच-कर्म जिज्ञासु होय, शब्द सुने जो कान ॥

वेद माही बहु भेद हैं, बूझे विरला कोय।
सुन्दर सो सद्‌गुरु बिना, निरवारो नहि होय ॥

परमातम से आतम जुदा रहे बहुकाल।
सुन्दर मेला कर दिये, सतगुरु मिले दलाल ॥

सद्‌गुरु शुद्ध स्वरूप है शिष्य देख गुरु देह।
सुन्दर कारज क्यों सरे, कैसे बढ़े सनेह ॥

श्री सद्‌गुरु साक्षात् परम ब्रह्म स्वरूप है उनमें देह बुद्धि नहीं रखनी चाहिए, क्योंकि गुरु तथा गोविन्द में कोई भिन्नता नहीं है, सद्‌गुरु व्यक्त है तथा गोविन्द अव्यक्त है। यथा—

परमेश्वर में गुरु बसें, गुरु परमेश्वर माहि।
सुन्दर दोउ परस्पर भिन्न भाव कछु नाहि ॥
परमेश्वर व्यापक सकल, घट धारे गुरुदेव।
सब घट को उपदेश करे, नहि जाने कछु भेव ॥

यह ध्रुव सत्य है कि :—

बिनु गुरु ज्ञान, को ज्ञान होय विराग बिन।
गावहि वेद-पुरान को सुख चहिअ हरि भगति बिन॥

कोऊ की पाव विश्राम तात सहज संतोष बिना।
चेले की नाव बिन जल कोटि जतन पचि-पचि-मरीय॥

बिना सद्‌गुरु की कृपा से अज्ञान रूपी अन्धकार दूर नहीं हो सकता। नहीं ज्ञान प्राप्त हो सकता है। श्री सुन्दर जी इसका सुन्दर चित्रण करते हुए कहते हैं कि—

गुरु बिन ज्ञान नहीं, गुरु बिन ध्यान नहीं,
गुरु बिन आतम विचार न लहतु हैं।
गुरु बिन प्रेम नहीं, गुरु बिन नेम नहीं,
गुरु बिन शिलहु संतोष न गहतु हैं।
गुरु बिन ध्यान नहीं, बुद्धि को प्रकाश नहीं,
भ्रमहु को नास नहीं, संशय रहतु हैं।
गुरु बिन वाट नहीं, कौड़ी बिन हाट नहीं,
सुन्दर प्रगट लोक-वेद यों कहतु हैं।

लोक-वेद क्या कहते हैं यथा—

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दशा को गहे,
गुरु के प्रसाद भव दुख विसराइये।
गुरु के प्रसाद प्रेम-प्रीतहु अधिक वाढ़े,
गुरु के प्रसाद राम-नाम गुन गाइये॥
गुरु के प्रसाद सब योग की युगति जाने,
गुरु के प्रसाद शुन्य में समाधि लाइये।
सुन्दर कहत गुरुदेव जो दयालु होय,
तिनके प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाइये॥

आधुनिक युग की मीरा सहजो वाई सप्रमाण गुरु की महिमा को गोविन्द से अधिक बतलाती हैं। आप भी उसका अवलोकन करें। यथा—

हरी ने जनम दियो जग माही। गुरु ने आवागमन छोड़ाई॥
हरी ने पाँच चोर दियो साथा। गुरु ने लई छुड़ाय अनाथा॥
हरी ने कुटुम्ब जाल में गेरो। गुरु ने काटी ममता वेरी॥
हरी ने रोग भोग उपजायो। गुरु योगी करी सभी दुरायो॥
हरी की माया वस प्राणी। भुगते दुख चौरासी खानी॥
गुरु प्रताप भव-मूल विनासे। विमल बुद्धि होय ज्ञान प्रकाशे॥
हरी ने करम-मरम-भरमायो। गुरु ने आतम रूप लखायो॥
चरन दास तन-मन वारो। गुरु न तजो हरिको तजि डारो॥
अखिल विबुध जग में अधिकारी। व्यास, वशिष्ठ महान अचारी॥
गौतम कपिल कणादि पतंजालि। जेमिन, वालमिक चरनन वलि॥
ये सब गुरु के शरने आये। तासे जग में श्रेष्ठ कहाये॥
याज्ञवल्क अरु जनक विदेही। दत्तात्रेय गुरु परम सनेही॥
चौबिस गुरु किन्हे जग माही। अहंकार उर राख्यो नाही॥
अम्बरीष प्रहलाद विभीषण। इत्यादिक भये जो भक्त जन॥
औरहु यति, तपि, सन्यासी। ये सब गुरु के परम उपासी॥
हरि-विरचि-शिव दीक्षा लिन्हा। नारद धीमर को गुरु किन्हा॥
संत-मध्य-साधू है जेते। गुरु पद पंकज सेवहि तेते॥
शेष सहस मुख बहु गुन गावें। गुरु महिमा को पार न पावे॥

राम-कृष्ण से को बड़ा, तिनहुँ तो गुरु कीन्ह।
तीन लोक के वे धनी गुरु आगे आधीन॥

इस प्रकार आपने सन्त महापुरुषों एवं अवतारी महापुरुषों का मत एवं विचार श्री सद्गुरु की महिमा के बारे में सुना अब आप शास्त्रों का श्री सद्गुरु के सम्बन्ध में क्या मत है सो भी देखें सुनें।

१—सत्यं-बोधमयं-शुचं निरुपमं प्रत्यक्षसर्वेश्वरम् ।
रत्नाशोभितशीशं शुभ्रमुकुटं श्वेताम्बराशोभितम् ॥
मुक्तामालविभूषितं च हृदये सिंहासने संस्थितम् ।
भक्तानां वरदं प्रसन्नवदनं श्रीगुरवे नमः ॥

२—गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

३—ध्यानमूलम् गुरुर्मूर्ति, पूजामूलं गुरोः पादुका ।
मंत्रमूलम् गुरोर्वाक्यः मोक्षमूलं गुरुकृपा ॥

४—ब्रह्मरूपो गुरुः साक्षात् यदि पूजादिकं चरेत् ।
तत् तत्सवे महेशा[illegible]न शतकोटि गुणम् भवेत् ॥

५—ब्रह्मानन्दं परं सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं, तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिरूपम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

६—गुरुः तीर्थो गुरुः यज्ञो, गुरुः दानं गुरुः तपः ।
गुरुः अग्निर्गुरुः सूर्यः, सर्वं गुरुमयं जगत् ॥

अखंडमंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

अब आपके समक्ष श्री सद्गुरु का क्या स्वरूप है, उसे लखाते हुए श्री गुप्तानन्द जी का यह कथन यहाँ प्रस्तुत है ।

मूल चक्र महं गणेश विराजत स्वाद चक्र महै कियो अज वासा ।
नाभिकमल महं विष्णु विसम्भर, हृदय कमल महं महादेव निवासा ॥
कंठकमल में बसे देवी नित, त्रिकुटी कमल महं सूर्य उजासा ।
सहस्रकमल दल आप विराजत, जाके प्रकाश सभे प्रकाशा ॥
मम गुरु स्वरूप से न्यारो नहीं कछु [illegible] नमाउँ कहो अब माथा ।

श्री कबीरदास जी भी सद्‌गुरु के इसी स्वरूप को दर्शाते हुए कहते हैं कि—

मेरी नजर में मोती आया,

करके कृपा दयानिधि सद्‌गुरु घट के बीच लखाया है।
कोई कहे हलका, कोई कहे भारी, सब जग मरम भुलाया है॥
ब्रह्मा - विष्णु - महेश्वर हारे पार न कोई पाया है।
शारद-शेष-सुरेश-दिनेश-गनेसहु जासु बहु विधि गुन गाया है॥
नेति-नेति महिमा वरनत वेदहु मन सुख जाया है।
दुई दल चतुर-अष्ट-अष्ट दस-द्वादस सहस कमल विच काया है॥
ताके ऊपर आप विराजे अद्‌भुत रूप धराया है।
है तिल के झिल-मिल-तिल भीतर तातिल बीच छिपाया है॥
तनका आड़ पहाड़-सी भासे परम पुरुष की छाया है।
अनहद की धुन भवर गुफा में अति घनघोर मचाया है॥
बजे बजे अनेक भाँति के सुनके मन ललचाया है।
पुरुष अनायी सकके स्वामी रच निज पिंड समाया है॥
ताकी नकल देख माया ने यह ब्रह्माण्ड रचाया है।
यह सब काल-जाल को फंदा मन कलपत ठहराया है॥
कहै कबीर सतपद सद्‌गुरु न्यारा कर दर्शाया है।
मेरो नजर में मोती आया है॥

उलटा कुआँ गगन में तामें जरे चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छ हो ऋतु बारहो मास रहे जलता दिन राती॥
सद्‌गुरु मिला जो होय ताहि के नजर में आवे।
निकले एक आवाज चिराग की जोती माही।
ज्ञानी समाधि सुने और कोई सुनता नाही॥

उस प्रकाश पुंज से क्या आवाज निकलती है। देखें मानस—

सोहम् अस्मि इति वृत्ति अखंडा।
दीप शिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा।

इस प्रकार श्री सद्गुरु के स्वरूप का स्व में दर्शन करने के बाद अब आयें अन्त में आपको विराट में सद्गुरु के देश का भी अवलोकन—दिग्-दर्शन करा दें।

गुरु सद्गु शरन जाइके करहू पुकारनिया।
जहाँ दिवस नहीं रात केवल ब्रह्म प्रकाशनिया॥
जहाँ दुख नहीं सुख जहाँ काम नहीं क्रोधा।
लोभ न मोह अभागिनिया॥

रस एक अखण्डा-रस एक अखण्डा नाम न रूप बिचारनिया।
जहाँ देश न देशा—नहीं शब्द अशब्दा।
जहाँ नहीं भाव-अभावा काल न व्याल बिनासनिया।
सोई प्रेम डगरिया ब्रह्मानन्द नगरिया।
नहि वार-अपारा, आदि न अंत न मध्यनिया।
यही सद्गुरु देश अमरपुर देसा जनम-मरन नहीं बंधनिया।
धरि रूप अनन्ता बहुवेश भनंता, हंसन के ठग कारनियाँ।
सुर नर मुनि मोहं अनुपद आसन सोहे शिव-विरंचि मद मारनियाँ।
गुरु भेद बताई निज रूप लखाई ममता मोह निवारनियाँ।
गुरु सद्गुरु शरन जाइके करहू पुकारनिया
जहाँ दिवस नहीं राती केवल ब्रह्म प्रकाशनिया।

ऐसे सद्गुरु की सेवा, भक्ति, भजन एवं ध्यान से ही जीव का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होगा तथा सभी प्रकार के पाप-ताप से मुक्त होकर जीवन के शाश्वत सुख एवं शान्तिमय स्वरूप का बोध

कर जीव परम प्रकाशक स्वरूप में स्थित हो जाता है। यही मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम जी का गुप्त सन्देश है। यथा—

औरहु एक गुपुत मत सबहि कहों कर जोर।
शंकर भजन बिन नर पावहि नहिं भगती मोर॥

अर्थात् परमब्रह्म राम धरा पर श्री सद्गुरु रूपी शंकर के रूप साक्षात् घटधारी होकर प्रकट है। अतः उनकी भक्ति जगत् में यहीं प्रगट एवं सुलभ है। सोई मनी यद्यपि प्रगट जग अहई। ऐसा ज्ञान हो जाना ही सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। इसलिए इसका नाम तत्त्व-ज्ञान पड़ा। इसी तत्त्वज्ञान रूपी मणि को मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने उक्त पद के माध्यम से सारे जगत् को प्रदान किया।

इस प्रकार पञ्चमणियोंसे युक्त मुक्तामाला सम्पूर्ण होती है। जिसमें भगवत् तत्त्व सम्बन्धी हीरा, मोती, रतन तथा मणि-माणिक्य जड़े हुए हैं तथा जो जन होइहै पारखी, लेइहैं रतन बिल-गाय। यथा—

बिन सद्गुरु नर फिरत भुलाना।
खोजत फिरत न मिलत ठिकाना॥

केहरि सुत इक लाय गड़ेरिया पाल पोस के किन्ह सयाना।
करत कलोल फिरत अजयन संग आपन मरम नाही उन जाना॥

मृगपति और जंगल से आयो, तेहि देखकर वह बहुत डेराना।
पकड़ भेद ताने समुझायो, आपन दशा देख सकुचाना॥

बिन सद्गुरु नर फिरत भुलाना।
खोजत फिरत न मिलत ठिकाना॥

मृग नाभी बसे कस्तूरी खोजत फिरत चौगाना।
व्याकुल होय मन ही मन सोचत यह सुगन्धि कहु कहा बसाना॥

काहू ने आन लखायो मन का भरम नसाना।
उलटे सुगन्धि नाभी को लिन्हो मन ही मन मुस्कान॥
कहत कबीर सूनो भाई साधो उलट के आप में आप समाना।
विन सद्गुरु नर फिरत भूलाना, खोजत फिरत न मिलत ठिकाना॥

वस्तु कहीं खोजे कहीं, कैसे आवे हाथ।
वस्तु मिले जब ही, जब भेदी लिन्हा साथ॥

जब भेदी लिन्हा साथ तौ वस्तु दिन्ह लखाय।
कोटि जन्म का पथ था पल में पहुँचा जाय॥

अब आप अपने लक्ष्य तक पहुँच गये जो इस मुक्तामाला का मूल अभिप्राय था, सो पूरा हो गया।

इति शुभम्

अखंड आनन्द

श्रीसद्गुरु के चरण कमल में

समर्पित :—

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।

प्रेषक—दासूराम निषाद
राजघाट, वाराणसी

लेखक—
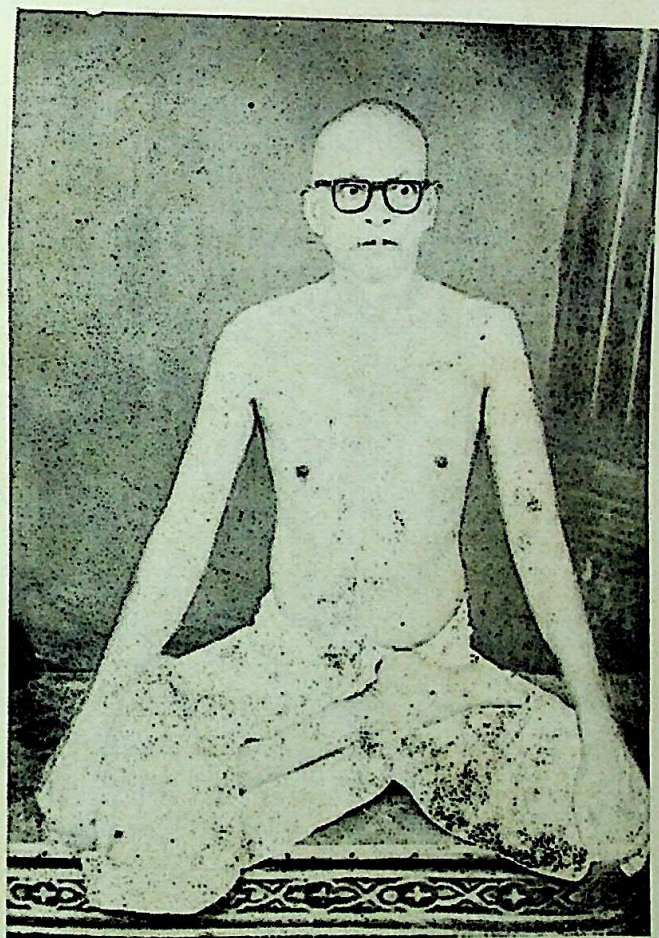
दासूराम निषाद

गुरु-महिमा

वन्दौं चरण सरोज गुरु मुद मंगल आगार।
जेहि सुमिरत नर होत हैं भव सागर से पार ॥
गुरु के सुमिरन मात्र से नाशत् विघ्न अनन्त।
तासे सर्भारम्भ में ध्यावत हैं सब संत ॥

गुरु-गुरु कहि के विश्व पुकारे। गुरु वही जो भरम निवारे ॥
बहुत गुरु हैं अस जग माहीं। हरे द्रव्य भव दुख कोऊ नाहीं ॥
तासे प्रथम परीक्षा कीजै। पीछे शिष्य होय दीक्षा लिजै ॥
जो कोई बिन जाने गुरु करहीं। सो नर भव सागर मह परहीं ॥
पाखडी-पापी अविचारी। नास्तिक कुटिल वृत्ति वक धारी ॥
अभिमानी निंदक शठ नट-खट। दुराचार युत अबला लम्पट ॥
क्रोधी-क्रूर-कुतर्क विवादी। लोभी समता रहित विषादी ॥
अस गुरु कबहूँ भूलि न कीजै। इनको दूर ही से तज दीजै ॥
निगमा-गम रहस्य के ज्ञाता। निस्पृह हित अनुशासन दाता ॥
दया क्षमा-संतोष सयुक्ता। परम विचार मान भव मुक्ता ॥
लोभ-मोह-मद-मत्सर त्यागी। रहत सदा परमारथ वादी ॥
राग द्वेस दु ख द्वन्द निवारी। रहे अखड सत्य व्रत धारी ॥
भद्र वेश मुद्रा अति सुन्दर। गति अपार मति धर्म धुरन्धर ॥
कृपया भक्तन पर कर प्रीती। यथा शास्त्र सिखवे शुभ नीती ॥

जिनके सपनेहु क्रोध डर, कबहुँ न होत प्रवेश।
मधुर वचन कहि प्रीत युत, देत सबही उपदेश ॥

हरे अबोध-बोध मन जन के। नाशि अशेष क्लेश जीवनके ॥
कृत्या-कृत्य-विकृत्य कर्म को। न्याया-न्याय-अधर्म धर्म को ॥
विविध भाँति सब निश्चय कराही। भिन्न-भिन्न सब भेद कावहिं ॥
सत-मिथ्या वस्तु परखावे। सुमति-कुमति मारग दरशावे ॥
तेहि गुरु की शारणागति लीजै। तन-मन-धन सब अर्पण कीजै ॥
असन-बसन वाहन अरु भूषण। दारा-सुत निज परिचारक गण ॥

करि सब भेंट गुरु के आगे। भक्ति भाव उर में अनुरागे ॥
तन यात्रा निर्वाह के कारण। मागें, देय सो लिजै धारण ॥
ले भिक्षुक सम दीन भाव मन। करे प्रणाम दंडवत् चरनन् ॥
महा यज्ञ को फल वह पावे। सुकृत वन्दि गुरु शीश नवावे ॥

यहि विधि गुरु की शरन ह्वै, करे निरंतर सेव।
गुरु सम जाने और नहिं त्रिभुवन में कोई देव ॥

जिन गुरु को मानुष करि जाने। तिन सबके निरभाग्य अयाने ॥
बुद्धि रहित नर पशू समाना। है प्रत्यक्ष बिनपुच्छ विषाना ॥
विश्व विशेष विदित प्रभुताई। गोविन्द से गुरु की है भाई ॥
गोविन्द की माया वश प्राणी। भुगते दुःख चौरासी खानी ॥
गुरु प्रताप भव मूल विनाशे। विमल बुद्धि होय ज्ञान प्रकाशे ॥
सुख अखंड नर भोगे सोई। सत्य लोक में बासा होई ॥
गुरु से श्रेष्ठ और को जग माहीं। हरि विरंचि शंकर कोऊ नाहीं ॥
सुहृद बंधु सुत-पितु महतारी। गुरु सम को दूजा हितकारी ॥

जाके रक्षक गुरु धनी सके काह करि और।
हरि रूठे गुरु शरन है गुरु रूठे नहिं ठौर ॥

योग-यग्य-जप-तप व्यवहारा। नेम धर्म संयम आचारा ॥
वेद-पुराण कहे गोहराई। बिन गुरु सब निसफल है भाई ॥
बिन गुरु ज्ञान विचार न आवे। विन गुरु कोई मुक्ति न पावे ॥
बिन गुरु हृदय शुद्ध न होई। कोटि उपाय करे जो कोई ॥
बिन गुरु यम के हाथ बिकाई। पाप दुःसह दुःख अति पछिताई ॥
बिन गुरु भूत-प्रेत तन धारी। भ्रमे सहस्त्र वर्ष नर-नारी ॥
बिन गुरु संशय कौन निवारे। हृदय विवेक केहि विधि धारे ॥
बिन गुरु नहि अज्ञान विनाशे। नहिं निज आतम रूप प्रकाशे ॥
बिन गुरु ब्रह्म ज्ञान जो गावे। सो नहिं मुक्ति पदारथ पावे ॥
तेहि कारण निश्चय गुरु कीजे। सुर दुर्लभ तन खोय न दीजे ॥

वेद-शास्त्र अरु भागवत, गीता पढ़े जो कोय।
तीन 'काल' संतुष्ट मन बिन गुरु कृपा न होय॥

अखिल विबुध जग में अधिकारी। व्यास वशिष्ट महान अचारी॥
गौतम कपिल कणादि पंतजलि। जेमिन वाल्मीक चरनन् वलि॥
ये सब गुरु के शरने आये। तासे जग में श्रेष्ठ कहाये॥
याज्ञवल्य अरु 'जनक विदेही। दत्तात्रय गुरु परम सनेही॥
चौबिस गुरु कीन्हे जग माहीं। अहंकार डर राख्यो नाहीं॥
अम्बरीष-प्रह्लाद विभीषण। इत्यादिक जो भये भक्त जन॥
औरहु यति-तापी सन्यासी। ये सब गुरु के परम उपासी॥
हरि-विरंचि-शिव दीक्षा लीन्हा। नारद धीमर को गुरु कीन्हा॥
संत महंथ साधु हैं जेते। गुरु पद पंकज सेवहिं तेते॥
शेष सहस मुख वहु गुन गावें। गुरु महिमा को पार न पावें॥

राम-कृष्ण सों को बड़ा, तिनहूँ तो गुरु कीन्ह।
तीन लोक के वे धनी, गुरु आगे आधीन॥

तप-विद्या को करि अभिमाना। पाय लक्ष्मी संपति नाना॥
जो गुरु को नहिं मस्तक नावे। सो नर अजगर को तन पावे॥
निज मुख जो गुरु निंदा करहीं। कल्प सहस्त्र नरक महँ परहीं॥
गुरु की निंदा सुने जो कोई। राक्षस-श्वान जन्म तेहि होई॥
गुरु से अहंकार उर धारी। करे विवाद मूढ़ अविचारी॥
ते नर मरु निरजल बन जाई। तृसित मरे राक्षस तन पाई॥
जो गुरु को तजि औरहि ध्यावे। होय दरिद्री अति दुख पावे॥
बिन दर्शन नहि गुरु के रहिये। यह दृढ़ निश्चय हृदय महँ गहिये॥
बिन दर्शन जो केर अहारा। होय व्याधि तन विविध प्रकारा॥
यथा शक्ति जन चूके नाहीं। होय अशक्त दोष नहिं ताही॥
गुरु संमुख नहि बैठे जाई। खाली हाथ हिलावत आई॥
जो कछु और नहीं बन पावे। पत्र-पुष्प-फल भेंट चढ़ावे॥

नम्र भाव अति प्रीति युत, चरन कमल सिर नाय।
जो सद्गुरु आज्ञा करें, लीजै शीश नवाय ॥

अति अधीन ह्वै बोले बानी। रंक समान जोरि युग पाणी ॥
कबहुँ न बैठी पाँव पसारी। जंघा पद धरि आसन मारी ॥
संमुख होय के गमन न कीजै। गुरु छाया पर पाव न दीजै ॥
गुप्तबात किंचित नहि राखे। करि छल-कपट न मिथ्या भाखे ॥
वेद मंत्र सम कहना माने। गुरु को परमातम सम जाने ॥
सत्या-सत्य विचार न कीजै। गुरु को कथन मान सब लीजै ॥
जो कछु श्रेष्ठ पदारथ पावे। सो गुरु चरनन् आनि चढ़ावे ॥
अद्भुत है गुरु की प्रभुताई। मिले सहस्त्र गुना होय आई ॥
किया यथा विधि गुरु की पूजा। शेष रहे कर्तव्य न दूजा ॥
जो गुरु को भोजन करवावे। मनो त्रिलोकहु न्योत जिवावे ॥

गुरु की महिमा है अमित कहि न सके श्रुत शेष।
जिनकी कृपा कटाक्ष से रंकहु होत नरेश ॥

अस प्रभाव दूसर है केहिमा। जस कछु है श्रीसद्गुरु की महिमा ॥
सर्ब सिद्धि प्रद अति फल दायक। दुःख संकट में परम सहायक ॥
नित उठि पाठ करे जो कोई। सकल पाप क्षय ताके होई ॥
चित चिन्ता संताप विनाशे। सुख सम्पति ऐश्वर्य प्रकाशे ॥
महा व्याधि ज्वर आदि निवारी। देय अकाल मृत्यु भय टारी ॥
लहे सकल सुख जे जग केरे। कबहुँ दरिद्र न आवे नेरे ॥
होय अलाभ लाभ मारग में। पावे मान प्रतिष्ठा जग में ॥
परम मंत्र यह अखिल फल प्रद। हरन सकल भव जन्म मरन गद ॥
श्रद्धावान भक्त लखि लीजै। ताको यह गुरु महिमा दीजै ॥
परम रहस्य गूढ़ यह जानी। कहन सबही प्रसिद्ध बरवानी ॥

धन्य मातु पितु धन्य हैं, धन्य सुहृद अनुरक्त।
धन्य ग्राम वह जानिये जहँ जन्मा गुरु भक्त ॥ इति